सेठिया जैन ग्रंथमाला की पुस्तकें-

तयार

सामायिकसूत्र मूलपाठ तथा विधि	रु०)॥
प्रतिक्रमण मूलपाठ और विधि	रु० -)
प्रकरण (थोकड़ा) संग्रह भाग दूसरा पक्की जिल्द	रु० १)
सामायिक शब्दार्थ, भावार्थ, और कोपसहित	रु० =)
प्रतिक्रमण सूत्र-शब्दार्थ, भावार्थ, विधि सहित	रु० ≡)
तैंतीस बोल का थोकड़ा	रु० -)
जैन बालोपदेश	रु० =)
कर्त्तव्य कौमुदी द्वितीयभाग हिंदी अनुवाद सहित	रु० ।-)
क्रिया कर्म वैराग्य	रु० -)।
श्रावक के बारह व्रत	रु० =)।
गुण विलास (विविधप्रकार स्तवन)	रु० ॥।)
नंदीसूत्र मूल पाठ	रु० ।=
मांगलिक स्तवन संग्रह भाग पहला	रु० =)॥
" " " " दूसरा	रु० -)।
प्रस्तार रत्नावली (इसमें गांगेय अनगार के भांगे, श्रावक व्रत के भांगे और आनुपूर्वी के भांगे हैं) पत्राकार पृ० २८० पक्कीजिल्द	रु० १।=
नमिपव्वज्जा-अन्वयार्थ, भावार्थ, संस्कृत छाया सहित	रु० ≡
महावीरस्तुति " " " "	रु० -)।
बृहदालोयणा श्री श्रावक लाला रणजीतसिंहजीकृत	रु० ॥
जैन सिद्धान्त कौमुदी (अर्द्धमागधीव्याकरणम्) पक्की-जिल्द	रु० १॥
नीतिदीपिका शतक	रु० =)

निम्न लिखित संस्थाएँ मूल धन (capital ध्रौव्य फण्ड) रु० ३३५०००) तीन लाख पैंतीस हजार का जो २१०००) इक्कीस हज़ार रुपये वार्षिक ब्याज तथा मकान भाड़ा आता है उससे चल रही हैं। मूल धन के सिवा संस्थाओं के लिये ७००००) सत्तर हजार रुपये की कीमत के दो विशाल भवन (बिल्डिंग) भी दिये गये हैं। इस समय कार्यक्षेत्र विस्तृत करदेने से खर्च भी बढ़ गया है, श्रीमान् सेठ साहब ने उसकी पूर्ति करने की उत्साह पूर्वक उदारता दिखाई है। मूल धन (ध्रौव्य फण्ड) और बिल्डिंग के ट्रस्टी आपके सुविनीत उत्साही ज्येष्ठपुत्र श्रीयुत जेठमलजी कर दिये गये हैं।

निम्न लिखित संस्थाओं में पण्डित अध्यापक (मास्टर) अध्यापिका लेखक तथा अन्य कर्मचारी सब मिल कर वर्तमान में ३७ जैन और २३ अजैन कुल ६० व्यक्ति कार्य कर रहे हैं।

विद्यालय (स्थापित विक्रम सं० १९७०)

इस विद्यालय में छात्रों को हिंदी, अंग्रेजी महाजनी (वाणिका) धर्मशास्त्र संस्कृत-व्याकरण न्याय साहित्य अलङ्कार छन्दशास्त्र प्राकृत आदि का अध्ययन

कराया जाता है, तथा कलकत्ता गवर्नमेन्ट संस्कृत कालेज आदि की परीक्षा भी दिलाई जाती है। प्रिंटिंगप्रेस (छापखाना) का तथा व्यापार लाइन का काम और शास्त्रीय लिपि में सूत्र सिद्धांत लिखने का काम भी सीखने की इच्छा रखने वाले को सिखाया जाता है।

इस विद्यालय में मेट्रिक या इससे अधिक अंग्रेजी की योग्यतावाले जैन विद्यार्थी यदि धार्मिक संस्कृत प्राकृत का अध्ययन करना चाहें तो उनके लिये, और अनाथ निराधार जैन बालकों के लिये रहने का स्थान, भोजन वस्त्र आदि का इन्तज़ाम किया जाता है। इस विद्यालय के आश्रित एक व्यायाम (कसरत) शाला है, जिसमें विद्यार्थियों को व्यायाम कराया जाता है। तथा अमेरिकन होमियोपैथिक दवा भी वितरण कीजाती है।

इस विद्यालय के आश्रित एक जैन तत्वप्रचारिणी सभा है जिसमें छात्रों को जैनतत्व सम्बन्धी व्याख्यान देना सिखाया जाता है।

श्राविका–पाठशाला

इस पाठशाला में श्राविकाओं को हिन्दी धार्मिक नैतिक व्यावहारिक शिक्षा तथा सीना पिरोना कसीदा करना गोटा किनारी बनाना आदि सिखाया जाता है।

जैन शास्त्रभण्डार–ग्रन्थालय (स्थापित विक्रम सं० १९७८)

इसमें हस्तलिखित-जैनशास्त्र संस्कृत, प्राकृत,

हिन्दी, गुजराती, अंग्रेजी पुस्तकों का संग्रह बड़ी खोज से किया जाता है। कई मासिक साप्ताहिक तथा दैनिक समाचार पत्र मंगाये जाते हैं, जो वाचकोंको विना फीस वांचने को मिलते हैं।

इस ग्रन्थालय में विद्वान् जैनसूत्र सिद्धान्तोंका संशोधन तथा हिन्दी अनुवाद करते हैं। लेखकों से सूत्र सिद्धान्तों की प्रतियां लिखाई जाती हैं, तथा प्राचीन प्रतियों से मिलान कराया जाता है।

इस ग्रन्थालय से जैनधर्म सम्बन्धी ग्रन्थ प्रकाशित होते हैं, जिनका मूल्य लागत से भी कम रक्खा जाता है, तथा कुछ पुस्तकें अमूल्य भी वितरण की जाती हैं।

इस शास्त्र भण्डार से एक सेठिया जैनग्रन्थमाला प्रकाशित होती है। जिसके ४८ पुष्प निकल चुके हैं।

इस ग्रन्थालय से दीक्षाभिलापियोंको स्वाध्याय तथा कण्ठस्थ करनेके लिए दशवैकालिक, उत्तराध्ययन, नमिपव्वज्जा महावीरजिनस्तुति (पुच्छिसुणं)आदि ग्रन्थालय से प्रकाशित हुई पुस्तकें मंगाने से नाम पता पूरा स्पष्ट अक्षरोंमें आनेपर एक एक प्रति भेट भेजी जाती है।

इस स्थान में दीक्षाभिलापी (वैरागी भाई और वैरागिन बाई)को दीक्षा का समय निश्चित होने पर वस्त्र पात्र रजोहरण आदि दीक्षा के उपकरण और हस्तलिखित मूलपाठ-दशवैकालिक, उत्तराध्ययन, नंदी, सुखविपाक आदि संशोधन की गई प्रतियाँ, तथा कई एक

ग्रन्थालय से छपी हुई पुस्तकें बिना मूल्य मिलती हैं।

इस संस्थाद्वारा— जैन लायब्रेरी(जैन पुस्तकालय) सभा, मण्डल, ज्ञानभण्डार पौषधशाला, उपाश्रय आदि ऐसे स्थानों में जहां जैनधर्म की पुस्तकों का संग्रह होता हो, वहां पर इस ग्रन्थालय से निकली हुई पुस्तकें मंगवाने से जो बिना मूल्यकी उपलब्ध पुस्तकें हैं उनमें से एक एक प्रति अमूल्य और मूल्यवाली पुस्तकें आधे मूल्य से वी. पी. द्वारा भेजी जाती हैं।

इस संस्था से जहां पर जैनधर्म की पढ़ाई होती है ऐसे विद्यालय, अनाथालय, पाठशाला, श्राविकाश्रम आदि संस्थाओं को ग्रन्थालय से प्रसिद्ध हुई सामायिक तथा प्रतिक्रमणसूत्र की पुस्तकें मंगाने पर आधी कीमत से वी. पी. द्वारा भेजी जाती हैं, और इनके साथ अध्यापक तथा अध्यापिकाओं के लिए एक एक प्रति भेंट भेजी जाती है।

सेठिया जैन प्रिन्टिंग प्रेस(स्थापित वि. सं. १९८१)

इस संस्था द्वारा जैनधर्म सम्बन्धी सूत्र सिद्धान्त आदि ग्रन्थ संस्कृत प्राकृत और हिन्दी भाषा में मुद्रित होते हैं।

निवेदक—

विक्रम सं० १९८२ } व्याकरणाचार्य [illegible]
भाद्रपद शुक्ला १० }



नमिपव्वज्जा (नमिप्रव्रज्या)



गाथा—चइऊण देवलोगाओ, उववन्नो माणुसम्मि लोगम्मि।
उवसंतमोहणिज्जो, सरइ पोराणियं जाइं ॥ १ ॥

छाया—च्युत्वा देवलोकादुपपन्नो मानुषे लोके।
उपशान्तमोहनीयः स्मरति पौराणिकीं जातिम् ॥ १ ॥

अन्वयार्थ—(**उवसंतमोहणिज्जो**) जिसके दर्शनमोहनीय कर्म का उपशम हो गया है, ऐसा नमिराजा का जीव (**देवलोगाओ**) स्वर्ग से (**चइऊण**) च्यवकर (**माणुसम्मि**) मानुष (**लोगम्मि**) लोकमें (**उववन्नो**) उत्पन्न हुआ, और (**पोराणियं**) पुरानी-पिछली (**जाइं**) जाति को (सरइ) स्मरण करने लगा।

भावार्थ—नमि राजा का जीव सातवें शुक्र देवलोक के पुष्पोत्तर विमान से च्यवकर अर्थात् देवपर्याय छोड़कर मनुष्यलोक में उत्पन्न हुआ, तथा दर्शनमोहनीय कर्म का उपशम होने से अपने पिछले देवलोक के जन्म आदि का स्मरण करने लगा। इस सूत्र में यह बात बताई गई है कि जिसके दर्शनमोहनीय कर्म का उपशम होता है वही आत्मा अपने पिछले जन्मों को ज्ञान द्वारा देख सकता है, और जिसके दर्शनमोहनीयकर्म का उदय होता है वह पिछले जन्म को तो क्या, इस जन्म के।

व्यवहारों को भी भूल जाता है, और साथ में यह बात भी प्रकट की है, कि उत्तम देव च्यवकर मनुष्य योनि में ही जन्मलेते हैं, पशु योनि में नहीं। पिछले जन्म के कथन से आचार्य महाराज ने नास्तिक मत का परिहार करके जीव का संसारभ्रमण सिद्ध किया है ॥१॥

जातिस्मरण से क्या हुआ ? इसी को दिखाते हैं—

गाथा—जाइं सरित्तु भयवं, सहसंवुद्धो अणुत्तरे धम्मे।
पुत्तं ठवित्तु रज्जे, अभिनिक्खमइ नमी राया ॥२॥

छाया—*जातिं स्मृत्वा भगवान्, स्वयंसंबुद्धोऽनुत्तरे धर्मे।*
पुत्रं स्थापयित्वा राज्ये, अभिनिष्क्रामति नमी राजा॥२॥

अन्वयार्थ—(**सहसंवुद्धो**) स्वयं बोध को प्राप्त हुआ (**भयवं**) बुद्धिमान् (**नमीराया**) नमि राजा (**जाइं**) जाति को (**सरित्तु**) स्मरण करके (**पुत्तं**) पुत्र को (**रज्जे**) राज्य पर (**ठवित्तु**) स्थापन करके (**अणुत्तरे**) सर्वोत्कृष्ट (**धम्मे**) चारित्रधर्मरूप दीक्षा को धारण करने के लिये (**अभिनिक्खमइ**) गृहस्थ पर्याय से निकला, अर्थात् गृहस्थ अवस्था का त्याग करने के लिये उद्यत हुआ॥

भावार्थ—नमि राजा को जातिस्मरण ज्ञान होने से, विना किसी उपदेश के अपने आप प्रतिबोध हुआ, अर्थात् सर्वोत्कृष्ट चारित्र धर्म को धारण करने की रुचि उत्पन्न हुई, इसलिए बुद्धिमान् नमि राजा ने अपने पुत्र को राज्य देकर दीक्षा ग्रहण की। इस सूत्र से यह शिक्षा प्राप्त होती है, कि ज्ञानपूर्वक ही दीक्षा सफल होती है। जो व्यक्ति ज्ञान प्राप्त किये विना दीक्षा के लिये उद्यत होते हैं, उनकी दीक्षा ज्ञान विना सफल नहीं होती ॥२॥

क्या काम करके नमि राजा ने दीक्षा ग्रहण की ? इस विषय को कहते हैं–

गाथा–सो देवलोगसरिसे, अंतेउरवरगओ वरे भोए ।
भुंजित्तु नमी राया, बुद्धो भोगे परिच्चयइ ॥ ३ ॥

छाया– *स देवलोकसदृशान्, वरान्तःपुरगतो वरान् भोगान् ।*
भुक्त्वा नमी राजा, बुद्धो भोगान् परित्यजति ॥ ३ ॥

अन्वयार्थ–(अंतेउरवरगओ) उत्तम रानियों वाले **(सो)** उस **(बुद्धो)** बोध को प्राप्तहुए **(नमीराया)** नमिराजा ने **(वरे)** श्रेष्ठ **(भोए)** भोगों को **(भुंजित्तु)** भोगकर पश्चात् **(भोगे)** भोगों का **(परिच्चयइ)** त्याग किया ।

भावार्थ–नमिराजा देवाङ्ग-नासमान सुन्दर स्त्रियों के सम्बन्ध से प्राप्त हुए स्वर्ग के समान उत्तमोत्तम विषयसुख का भोग कर रहे थे, किन्तु जब तत्वज्ञान प्राप्त हुआ, तब विषयों को दुःखदाई समझकर तत्काल त्याग-दिया । जब वस्तु के वास्तविक विपाक–फल का भान हो जाता है तब वह विषमिश्रित भोजन की तरह तत्काल छोड़ दी जाती है । इसलिये प्रथम तत्वज्ञान प्राप्त करना आवश्यक है । इस सूत्र से यह शिक्षा मिलती है कि स्वर्ग के समान काम भोग भी दुःख स्वरूप है, तब ही तो नमि राजर्षि ने उन का त्याग किया ॥ ३ ॥

क्या नमि राजर्षि ने केवल काम भोग ही छोड़े या कुछ औरभी छोड़ कर दीक्षा ली ? इसी विषय को कहते हैं–

गाथा—मिहिलं सपुरजणवयं, बलमोरोहं च परियणं सव्वं।
चिच्चा अभिनिक्खंतो, एगंतमहिट्ठिओ भयवं॥४॥

छाया—*मिथिलां सपुरजनपदां, बलमवरोधं च परिजनं सर्वम्।*
त्यक्त्वा अभिनिष्क्रान्त एकान्तमधिष्ठितो भगवान्॥४॥

अन्वयार्थ—(**भयवं**) भगवान् अर्थात् धैर्यादिगुण वाले नमि राजर्षि ने (**सपुरजणवयं**) दूसरे नगर और देशों के साथ (**मिहिलं**) मिथिला नगरी (**बलं**) चतुरंगी सेना (**ओरोहं**) अन्तःपुर अर्थात् रनवास (**च**) और (**परियणं**) कुटुम्ब (**सव्वं**) सब को (**चिच्चा**) त्यागकर दीक्षा ग्रहण की और (**एगंत**) मोक्ष का (**अहिट्ठिओ**) आश्रय लिया।

भावार्थ—धैर्यादि गुणवाले नमिराजर्षि ने अन्य नगर देश और सेना के साथ मिथिला नगरी को त्याग दिया। इतना ही नहीं, किन्तु अपने रनवास की अतिप्रिय मनोहर रानियों को तथा दास दासी आदि सम्पूर्ण परिग्रह को जीर्णतृणवत् छोड़कर मुनिदीक्षा ग्रहण की। द्रव्यएकान्त उद्यान का तथा भावएकान्त सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र रूप मोक्षमार्ग का आश्रय लिया। इस का तात्पर्य यह है कि जिस आत्मा में धैर्यादि गुण प्रकट हो जाते हैं, वही दीक्षा का पात्र है। जो साधारण कष्ट आने पर या अन्य कारणों से चलायमान हो जाता है, वह दुर्धर मुनिदीक्षा के योग्य नहीं है। तथा दीक्षा की सफलता एकान्त वन आदि स्थानों में निवासकरने से ही होती है, क्योंकि स्त्री पुरुषादि का संसर्ग रहने से आत्मशान्ति में बाधा उपस्थित होती है। इसलिये भावएकान्तरूप मोक्ष की सिद्धि में द्रव्यएकान्त रूप वनादि भी प्रधान हेतु है। अतः

नमि राजर्षि ने आत्मशान्ति में विघ्न करने वाले राज्य को तथा देवांगना समान सुन्दर स्त्री समाज आदि को छोड़कर एकान्त वन में जाकर मोक्षमार्ग में पदार्पण किया ॥ ४ ॥

जिस समय नमि राजर्षि राज्यादि को छोड़ एकान्त वन में जाकर मोक्ष साधन में लग गये, उस समय मिथिला नगरी में क्या हुआ ? इसे दिखाते हैं–

गाथा–कोलाहलगभूयं, आसी मिहिलाए पव्वयंतम्मि ।
तइया रायरिसिम्मि, नमिम्मि अभिनिक्खमंतम्मि ॥ ५ ॥

छाया–*कोलाहलकभूतमासीन्मिथिलायां प्रव्रजति ।*
तदा राजर्षौ नमावभिनिष्क्रामति ॥ ५ ॥

अन्वयार्थ–जिस समय **(रायरिसिम्मि)** राजर्षि **(नमिम्मि)** नमि **(अभिनिक्खमंतम्मि)** गृहादि तथा कषायादि से निकल कर अर्थात् गृहादि का तथा कषायादि का त्याग कर **(पव्वयंतम्मि)** दीक्षा लेरहे थे **(तइया)** उस समय **(मिहिलाए)** मिथिलापुरी के **(कोलाहलगभूयं)** गृहादि में कोलाहल रोने का शब्द उत्पन्न हुआ ।

भावार्थ–जिस समय नमिराजर्षि अन्तरंगपरिग्रह क्रोधादि और बाह्यपरिग्रह गृहादि का त्याग कर दीक्षा लेरहे थे, उस समय मिथिलापुरी के गृह उद्यान आदि स्थानों में बड़ा भारी कोलाहल अर्थात् रोने का शब्द हुआ। यह संसार का नियम है कि जिस को जिस से सुख मिलता है, उस सुख देनेवाले का वियोग होते देखकर उस से होनेवाले सुख की निराशा झलकती है; तब नाना प्रकार के विलाप होने लगते हैं। इसी नियम के अनुसार नमि राजर्षि का वियोग होने से अपने सुख का अभाव देख कर लोग

अनेक प्रकार के आनन्द करने लगे। आचार्य महाराज ने नमि राजा को गृहस्थावस्था में भी राजर्षि कहा। इसका कारण यह है कि- "कामः क्रोधस्तथा लोभो, हर्षो मानो मदस्तथा। षड्वर्गमुत्सृजेदेनं, तस्मिंस्त्यक्ते सुखी नृपः॥१॥" इस राजनीति के अनुसार नमि राजा ने राज्यावस्था में ही कोधादि छह अन्तरंग शत्रुओं को जीत लिया था, इसलिए इन को राजर्षि कहा है॥५॥ मिथिला नगरी में कोलाहल होने के पश्चात् क्या हुआ, इसको बताते हैं-

गाथा–**अब्भुट्ठियं रायरिसिं, पव्वज्जाठाणमुत्तमं।**
सक्को माहणरूवेण, इमं वयणमब्बवी॥ ६॥

छाया–अभ्युत्थितं राजर्षि, प्रव्रज्यास्थानमुत्तमम्।
शक्रो ब्राह्मणरूपेणेदं वचनमब्रवीत्॥६॥

अन्वयार्थ–**(उत्तमं)** उत्तम **(पव्वज्जाठाणं)** दीक्षास्थान पर **(अब्भुट्ठियं)** आये हुए **(रायरिसिं)** नमि राजर्षि को **(सक्को)** इन्द्र **(माहणरूवेण)** ब्राह्मण का रूप धारण करके **(इमं)** इस प्रकार **(वयणं)** वचन **(अब्बवी)** बोला।

भावार्थ–जब नमि राजर्षि सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र रूप दीक्षा के उत्तम स्थान पर उपस्थित हुए, तब पहिले सौधर्म स्वर्ग के इन्द्र महाराज उनके वैराग्य की परीक्षा करने के लिए स्वर्ग से उत्तर कर वहाँ आये, और ब्राह्मण का रूप बनाकर नमि राजर्षि से पूछने लगे, कि आज मिथिला नगरी में कोलाहल क्यों हो रहा है? इत्यादि। यह कार्य दूसरे देव के द्वारा भी कराया जा सकता था, किन्तु स्वयं परीक्षा करने में जो आनन्द होता है, वह सुनने से नहीं हो सकता। इसलिए स्वयं इन्द्र महाराज वहाँ

परीक्षा करने के लिए आये। दीक्षा ही असली गुणों का स्थान है, अतः इसको उत्तम स्थान कहा है। नमि राजा को उसी उत्तम स्थान पर आरूढ़ होते हुए देखकर, इन्द्र महाराज परीक्षा करने के लिए स्वर्ग से मिथिला में आये॥६॥

शक्रेन्द्र ने पहलेपहल नमिराजर्षि से क्या पूछा? इसी को कहते हैं--

गाथा--किण्णु भो! अज्ज मिहिलाए, कोलाहलगसंकुला।
सुव्वंति दारुणा सद्दा, पासाएसु गिहेसु य ॥७॥

छाया--*किन्नु भो! अद्य मिथिलायां, कोलाहलकसंकुलाः।*
श्रूयन्ते दारुणाः शब्दाः, प्रासादेषु गृहेषु च॥७॥

अन्वयार्थ--(भो) हे नमे! **(अज्ज)** आज **(मिहिलाए)** मिथिला नगरी के **(पासाएसु)** महलों में **(य)** और **(गिहेसु)** घरों में **(कोलाहलगसंकुला)** कोलाहल से व्याप्त **(दारुणा)** भयंकर **(सद्दा)** शब्द **(किण्णु)** क्यों **(सुव्वंति)** सुनाई देते हैं।

भावार्थ--शक्रेन्द्र नमिराजर्षि को पूछते हैं कि हे नमे! आज मिथिला नगरी के राजभवनों में घरों में चौहटों में और मार्ग उद्यानादि सम्पूर्ण स्थानों में हृदय को विदीर्ण करने वाले भयानक रोने के शब्द क्यों सुनाई देते हैं? हे नमे! नीतिमान् राजा के राज्य में प्रजा का इस तरह दुःखी होकर रोना असंभव है। इस का मूल कारण क्या है? मुझे प्रकट करो॥७॥

इस प्रकार शक्रेन्द्र के पूछने पर क्या हुआ? इस को दिखाते हैं--

गाथा–एयमट्ठं निसामित्ता हेउकारणचोइओ।
तओ नमी रायरिसी, देविंदं इणमब्बवी ॥८॥

छाया–एतमर्थं निशम्य, हेतुकारणचोदितः।
ततो नमी राजर्षि देवेन्द्रमिदमब्रवीत् ॥८॥

अन्वयार्थ–(**तओ**) शक्रेन्द्र के पूछने के बाद (**नमीरायरिसी**) नमि राजर्षि (**एयं**) इस (**अट्ठं**) पूर्वोक्त अर्थ को (**निसामित्ता**) सुनकर (**हेउकारणचोइओ**) हेतु और कारण से प्रेरित होते हुए (**देविंदं**) देवेन्द्रको (**इणं**) आगे कहे अनुसार (**अब्बवी**) बोले।

भावार्थ अपने मत का स्थापन और दूसरे मत का खंडन करने के लिये हेतु और कारण की आवश्यकता होती है। प्रतिज्ञा हेतु उदाहरण उपनय और निगमन इन पांच अवयववाले वाक्य को हेतु कहते हैं। पक्ष का कहना प्रतिज्ञा है। साध्य के साथ अविनाभाव सम्बन्ध रखने वाले को हेतु कहते हैं। दृष्टान्त के वचन को उदाहरण कहते हैं। पक्ष में हेतु के दुहराने को उपनय, और हेतुपूर्वक प्रतिज्ञा के दुहराने को निगमन कहते हैं। जिस के बिना कार्य की उत्पत्ति न हो, उस को कारण कहते हैं। इन्द्र ने हेतु और कारण सहित प्रश्न किया, वह निम्न प्रकार है। हे नमिराज ! तुम सरीखे धर्मात्माओं को दीक्षा लेना उचित नहीं है "प्रतिज्ञा"। क्योंकि तुम्हारे दीक्षित होने से आक्रन्दन-विलाप आदि भयानक शब्द उत्पन्न होते हैं"हेतु"। जिन२ कामों से विलापादि भयानक शब्द उत्पन्न होते हैं, वे वे कार्य धर्मार्थी पुरुषों के करने योग्य नहीं हैं। जैसे जीव-हिंसादि कार्यों से आक्रन्दन आदि दारुण शब्द

होते हैं, अतएव वे धार्मिक पुरुषों के करने योग्य नहीं हैं "दृष्टान्त" । जीवहिंसादि क्रियाओं की तरह तुम्हारा दीक्षा लेना भी रुदन आदि भयंकर शब्दों का कारण है "उपनय" । इसलिये तुम को दीक्षा लेना योग्य नहीं है "निगमन" । इस पञ्चावयवरूप वाक्य को हेतु कहते हैं। तुम दीक्षा ग्रहण कर रहे हो, इसलिये ये हृदयविदारक शब्द हो रहे हैं। यहां विलापादि दारुण शब्द कार्य है, और दीक्षा ग्रहण करना उन का कारण है । यदि तुम दीक्षा ग्रहण न करोगे, तो ये भयानक शब्द नहीं होंगे । इस का तात्पर्य यह है, कि तुम्हारी इस प्रव्रज्या से सारे नगर में हृदय विदारक हाहाकार विलापादि के शब्द हो रहे हैं, इसलिये तुम जैसे धर्मात्माओं को ऐसा परपीड़ाकारी कार्य नहीं करना चाहिये । इस प्रकार इन्द्र के प्रश्न को सुनकर नमि राजर्षि उत्तर देने में प्रवृत्त हुए ॥ ८॥

नमि राजर्षि देवेन्द्र को उत्तर देते हैं —

गाथा—मिहिलाए चेइए वच्छे, सीयच्छाए मणोरमे।
पत्तपुप्फफलोवेए, वहूणं बहुगुणे सया ॥ ९ ॥

छाया—*मिथिलायां चैत्ये वृक्षे . शीतच्छाये मनोरमे ।*
पत्रपुष्पफलोपेते . बहूनां बहुगुणे सदा ॥ ९ ॥

अन्वयार्थ—(मिहिलाए) इस मिथिला नगरी के **(चेइए)** उद्यानमें **(वच्छे)** वृक्षों से घिराहुआ **(सीयच्छाए)** शीतलछाया वाला **(पत्तपुप्फफलोवेए)** पत्र पुष्प और फल से युक्त तथा **(बहूणं)** बहुत पक्षियों का **(सया)** सदा **(बहुगुणे)** फलादि द्वारा उपकार करने वाला **(मणोरमे)** चित्त को प्रसन्न करने वाला मनोरम नाम का एक वृक्ष है।

भावार्थ—नमि राजर्षि देवेन्द्र के प्रति कहते हैं, कि हे देवेन्द्र! इस मिथिला नगरी के बाहर वृक्षों से परिपूर्ण एक उद्यान है। उसमें एक मनोरम नाम का वृक्ष है, जो पत्तों पुष्पों और फलों से लदा हुआ है, जिसकी शीतल छाया है, तथा अपने फलादि द्वारा सदा बहुसंख्यक पक्षियों का उपकार करता रहता है, और अपनी अलौकिक शोभा से सब के चित्त को प्रसन्न करता है। अर्थात् वह मनोरम नाम का वृक्ष अपने आश्रित पक्षियों को हर तरह सुख पहुँचाता है ॥९॥

उस वृक्ष का क्या हुआ? इस को दिखाते हैं—

गाथा—वाएण हीरमाणम्मि, चेइयम्मि मणोरमे ।
दुहिया असरणा अत्ता, एए कंदंति भो! खगा ॥१०॥

छाया—*वातेन ह्रियमाणे, चैत्ये मनोरमे ।*
दुःखिता अशरणा आर्ता एते क्रन्दन्ति भो! खगाः ॥१०॥

अन्वयार्थ—(**भो!**) हे इन्द्र! (**एए**) ये (**खगा**) पक्षी (**मणोरमे**) उस मनोरम नाम वाले (**चेइयम्मि**) वृक्ष के (**वाएण**) वायु से (**हीरमाणम्मि**) उखड़ जाने पर (**असरणा**) शरण रहित होने के कारण (**दुहिया**) दुःखित और (**अत्ता**) पीड़ित होकर (**कंदंति**) आक्रन्दन कर रहे हैं।

भावार्थ—नमि राजर्षि कहते हैं, कि हे देवेन्द्र! वह मनोरम नाम का वृक्ष जब वायु से उखड़ गया, तब उसपर निवास करने वाले पक्षी शरण रहित होने से शारीरिक और मानसिक पीड़ा का अनुभव करके विलाप करने लगे। इसी प्रकार हे देवेन्द्र! वैराग्य रूपी वायु ने मुझे संसार से पृथक् करदिया है, ये स्वजन रूपी पक्षी अपने स्वार्थ का भंग

होते हुए देख कर विलाप कर रहे हैं। यदि इनका [illegible] करता, तो ये कदापि आक्रन्दन नहीं करते, इसलिये [illegible] न होना ही इनके रुदन का कारण है, मैं नहीं हूं। जो तुमने [illegible] को रुदन का कारण बनाया है यह युक्तिसंगत नहीं है। इस [illegible] राजर्षि ने इन्द्र को उत्तर दिया ॥१०॥

इसके बाद क्या हुआ ?, इसे दिखाते हैं —

गाथा— एयमट्ठं निसामित्ता, हेउकारणचोइओ।
तओ नमिं रायरिसिं, देविंदो इणमब्बवी ॥११॥

छाया— *एतमर्थं निशम्य , हेतुकारणचोदितः।*
ततो नमिं राजर्षिं , देवेन्द्र इदमब्रवीत् ॥११॥

अन्वयार्थ—(तओ) नमिराजाके उत्तर देने के बाद **(देविंदो)** देवेन्द्र **(एयं)** इस **(अट्ठं)** पूर्व कहे हुए अर्थ को **(निसामित्ता)** सुनकर **(हेउकारणचोइओ)** हेतु कारण से प्रेरित होता हुआ **(नमिं)** नमि **(रायरिसिं)** राजर्षि को **(इणं)** आगे कहे अनुसार **(अब्बवी)** बोला।

भावार्थ— जब नमिराजर्षि ने देवेन्द्र द्वारा कहे गये हेतु और कारण को खंडित कर दिया, तब देवेन्द्र पुनः नमिराजर्षि को पूछने के लिये तत्पर हुआ ॥११॥

इन्द्रने दूसरा कौनसा प्रश्न किया? इस को कहते हैं—

गाथा—एस अग्गी य वाऊ य, एयं डज्झइ मंदिरं।
भगवं ! अंतेउरं तेणं, कीसणं नावपेक्खह ॥

प्रेरित होते हुए (देविंदं) देवेन्द्र को (इणं) आगे कहे अनुसार (अब्बवी) बोले ॥

भावार्थ—हे नमिराज! जो यह अग्नि, वायु द्वारा प्रचण्ड रूप धारण करके राजभवन अन्तःपुर आदि को भस्म कर रही है, इसके कारण तुम ही हो। यदि तुम पहले ही इनकी रक्षा की ओर ध्यान देते तो यह अग्निकाण्ड उपस्थित नहीं होता, और न लोगों को दुःख होता। इसलिए इस दुःख के कारण तुम ही हो। इस प्रकार हेतु कारण से प्रेरित होकर नमिराजर्षि इन्द्र को उत्तर देने में प्रवृत्त हुए ॥१३॥

नमिराजर्षि ने क्या उत्तर दिया इसको दिखाते हैं—

गाथा—सुहं वसामो जीवामो, जेसिं मो नत्थि किंचणं।
मिहिलाए डज्झमाणीए, न मे डज्झइ किंचणं॥१४॥

छाया—*सुखं वसामो जीवामो, येषामस्माकं नास्ति किञ्चन।*
मिथिलायां दह्यमानायां, न मे दह्यते किञ्चन ॥१४॥

अन्वयार्थ--(**जेसिं**) क्यों कि हम (**सुहं**) सुख पूर्वक (**वसामो**) निवास कर रहे हैं (**जीवामो**) जी रहे हैं (**मो**) हमारा (**किंचणं**) कुछ भी (**नत्थि**) नहीं है इसलिए (**मिहिलाए**) मिथिला के (**डज्झमाणीए**) जलनेपर (**मे**) हमारा (**न**) कुछ नहीं (**डज्झइ**) जलता है।

भावार्थ— नमि राजर्षि बोलेकि हे देवेन्द्र! मैं सुखपूर्वक ज्ञान दर्शन चारित्र रूप आत्मस्वरूप में निवास कर रहा हूँ, तथा प्राणों को धारण किये हुए हूँ। मिथिला नगरी में मेरा कुछभी नहीं है। कारण कि मैं अकेला हूँ, ज्ञान दर्शन मेरा स्वरूप है इसके अतिरिक्त मेरा कुछभी नहीं है,

और अकेला [illegible] लेता है और अकेला मरता है। जो ये मिथिलानि- [illegible] में [illegible] [illegible] है। [illegible] [illegible] है, [illegible] स्त्री आदि के बिना सब वस्तुएं [illegible] हैं ॥१४॥

इसी अर्थ को फिर दिखाते हैं

गाथा–चत्तपुत्तकलत्तस्स, निव्वावारस्स भिक्खुणो।
पियं न विज्जइ किंचि, अप्पियंपि न विज्जइ ॥१५॥

छाया–त्यक्तपुत्रकलत्रस्य, निर्व्यापारस्य भिक्षोः।
प्रियं न विद्यते किंचिदप्रियमपि न विद्यते ॥१५॥

अन्वयार्थ–(चत्तपुत्तकलत्तस्स) जिसने स्त्री पुत्रादि को छोड़ दिया है तथा **(निव्वावारस्स)** कृषि पशुपालन आदि सांसारिक क्रियाओं का त्याग किया है, **(भिक्खुणो)** उस साधु के **(किंचि)** कोई वस्तु **(पियं)** प्रिय **(न)** नहीं **(विज्जइ)** है, **(अप्पियंपि)** और अप्रिय भी **(न)** नहीं **(विज्जइ)** है ॥

भावार्थ–जिस साधु ने पुत्र कलत्रादि का त्याग करदिया है, तथा कृषि पशुपालन वाणिज्यादि लौकिक क्रियाओं को भी छोड़ दिया है, ऐसे साधुओं को कोई पदार्थ न तो प्रिय होते हैं, और न अप्रिय ही होते हैं। हे इन्द्र ! यदि मेरे हृदय में प्रिय अप्रियपने का भाव होता तो मैं पुत्र कलत्रादि का त्याग कदापि नहीं कर सकता। स्त्री पुत्रादि का त्याग करने से अब मेरा अन्तःपुर और राजभवन आदि से कोई सम्बन्ध नहीं रहा है। इसलिये अन्तःपुर राजभवन आदि के जलते रहने पर मेरा कुछ नहीं जलता है। इस उत्तर से मुनि की निर्दयता नहीं प्रकट होती है, किन्तु

निर्मोहता प्रकट होती है। क्योंकि इन्द्र का प्रश्न "तुम्हारे अन्तःपुर आदि जलरहे हैं, इनकी रक्षा करना तुम्हारा कर्तव्य है, इत्यादि" मोहनीय कर्म की परीक्षाके लिए था। इसलिये मुनि को उक्त प्रकार निर्मोह भाव दिखाना ही युक्तिसंगत है ॥ १५ ॥

गाथा--बहु खु मुणिणो भद्दं, अणगारस्स भिक्खुणो।
सव्वतो विप्पमुक्कस्स एगन्तमणुपस्सओ॥१६॥

छाया-- *बहु खलु मुनेर्भद्रं, अनगारस्य भिक्षोः ।*
सर्वतो विप्रमुक्तस्य एकान्तमनुपश्यतः ॥१६॥

अन्वयार्थ--(एगंतं) एकान्त अर्थात् एक आत्मा का **(अणुपस्सओ)** चिन्तन करने वाले तथा **(सव्वतो)** आभ्यन्तर और बाह्य परिग्रह **(विप्पमुक्कस्स)** रहित **(अणगारस्स)** गृहत्यागी **(भिक्खुणो)** भिक्षुको **(खु)** निश्चय से **(बहु)** बहुत **(भद्दं)** सुख प्राप्त होता है ॥

भावार्थ--नमिराजर्षि कहते हैं कि हे देवेन्द्र ! आत्मत्यागी मुनि को अनुपम आनन्द प्राप्त होता है। क्योंकि उसने दुःख के कारण-भूत पुत्र कलत्रादि बाह्य परिग्रह को तथा मिथ्यात्व क्रोधादि अन्तरंग परिग्रह को त्याग दिया है, और वह एकान्त में रहकर एकत्व भावना द्वारा आत्मविचार में मग्न रहता है, इसलिये जो सुख मुनि को होता है वह वचन के अगोचर है। जिस को आत्मा का अनुभव नहीं है, वह पुरुष परम विभूतिशाली होने पर भी आनन्द का अनुभव नहीं कर सकता है। इसप्रकार नमिराजर्षि ने मुनिधर्म को मुख्य सिद्ध करके क्षत्रिय धर्म को प्रधान बताने वाले इन्द्र के प्रश्न का समाधान किया ॥ १६ ॥

इस प्रकार नमिराज के उत्तर देने पर क्या हुआ? इसे दिखाते हैं-

गाथा-एयमट्ठं निसामित्ता, हेउकारणचोइओ
तओ नमिं रायरिसिं, देविंदो इणमब्बवी ॥१७॥

छाया-एतमर्थं निशम्य, हेतुकारणचोदितः ।
ततो नमिं राजर्षिं, देवेन्द्र इदमब्रवीत्॥ १७ ॥

अन्वयार्थ-(तओ) नमिराजर्षि के उत्तर देने पर **(हेउ-कारणचोइओ)** हेतु और कारण से प्रेरित हुआ **(देविंदो)** देवेन्द्र **(नमिं)**नमि **(रायरिसिं)**राजर्षि को **(इणं)**इसप्रकार**(अब्बवी)** बोला।

भावार्थ-हे भगवन् नमे! यह अग्नि तुम्हारे इन राजभवन अन्तः-पुर आदि को भस्म कर रही है, इन की रक्षा करना तुम्हारा मुख्य कर्त्तव्य है। इसप्रकार देवेन्द्र के कहनेपर नमिराजर्षि बोले, कि हे देवेन्द्र! ज्ञान दर्शनरूप मेरी आत्मा के सिवा मेरा अन्य कोई नहीं है, तथा मैंने पुत्र कलत्रादि सम्पूर्ण परिग्रह का त्यागकर मुनिधर्म धारण करलिया है, इसलिए अब मेरा इनके साथ कोई सम्बन्ध नहीं रहा है, इत्यादि। इस उत्तर को सुनकर हेतु और कारण से प्रेरित हुआ देवेन्द्र पुनः नमिराजर्षि से पूछने के लिए तत्पर हुआ ॥१७॥

इन्द्र ने फिर कौन सा प्रश्न किया? इस को कहते हैं—

गाथा-पागारं कारयित्ताणं, गोपुरट्टालगाणि य।
उस्सूलगसयग्घीओ,तओ गच्छसि खत्तिया!
॥१८॥

छाया--*प्राकारं कारयित्वा, गोपुराट्टालकानि च ।*

खातिकाः शतघ्न्यस्ततो गच्छसि (गच्छ) क्षत्रिय! ॥१८॥

अन्वयार्थ--(खत्तिया!) हे क्षत्रिय! **(पागारं)** कोट-किला **(गोपुरट्टालगाणि)** नगर के मुख्यद्वार और अट्टालिका अर्थात् कोटके ऊपर युद्ध करने के स्थान **(य)** और **(उस्सूलगसयग्घीओ)** खाई तोप आदि शस्त्र **(कारयित्ता णं)** बनवाकर **(तओ)** पश्चात् **(गच्छसि)** जाओ अर्थात् दीक्षा लो ।

भावार्थ--हे क्षत्रिय! तुमको नगर की रक्षा के लिए कोट, उसके दर्वाजे किंवाड़ आगल बनवाना चाहिये, तथा कोट के ऊपर युद्ध करने के लिये कोठे बुर्ज खाई और तोपें आदि भी बनवाना चाहिये। ये सब कार्य कर चुकने के बाद तुम को दीक्षा ग्रहण करना योग्य है। क्योंकि तुम क्षत्रिय हो और क्षत्रिय उसे कहते हैं जो भय से रक्षा करे। इस लिये तुम्हारा धर्म है कि तुम पहले अपनी मिथिला नगरी को भय रहित करके पीछे दीक्षा लो। इस प्रकार देवेन्द्र ने नमिराजर्षि से कहा ॥१८॥

देवेन्द्र के पूछने पर क्या हुआ? इसको बताते हैं--

गाथा--एयमट्ठं निसामित्ता , हेउकारणचोइओ ।

तओ नमी रायरिसी ,देविंदं इणमब्बवी ॥१९॥

छाया--*एतमर्थं निशम्य, हेतुकारणचोदितः*

ततो नमी राजर्षिर्देवेन्द्रमिदमब्रवीत् ॥१९॥

अन्वयार्थ--(तओ)देवेन्द्र के प्रश्न करने के बाद **(एयं)** पूर्वोक्त **(अट्ठ)** अर्थ को **(निसामित्ता)**सुनकर **(हेउकारणचोइओ)** हेतु और कारण से प्रेरित हुआ **(नमी)** नमि **(रायरिसी)** राजर्षि **(देविंदं)** देवेन्द्र से **(इणं)** इस प्रकार **(अब्बवी)** बोला ।

भावार्थ—हे नमिराज! नगर की रक्षा कोट खाई तोप आदि सामग्री से होती है, अतः तुम्हारा कर्तव्य है कि तुम नगर की रक्षा के लिए गढ़ कोट आदि बनवाओ, बनवा कर पश्चात् दीक्षा ग्रहण करो। इस प्रकार हेतु-कारण से प्रेरित होकर नमिराजर्षि उत्तर देने में प्रवृत्त हुए ॥ १९ ॥

नमिराजर्षि ने क्या उत्तर दिया? सो कहते हैं—

गाथा—सद्धं नगरिं किच्चा, तवसंवरमग्गलं।
खंतिं निउणपागारं, तिगुत्तं दुप्पधंसयं ॥ २० ॥

छाया—श्रद्धां नगरीं कृत्वा, तपःसंवरमर्गलाम्।
क्षान्तिं निपुणप्राकारं, त्रिगुप्तं दुष्प्रधर्षकम् ॥ २० ॥

अन्वयार्थ—(सद्धं) श्रद्धा की (नगरिं) नगरी (तवसंवरं) तप और संवर की (अग्गलं) आगल (खंतिं) क्षमा आदि दश धर्मों को (निउणपागारं) दृढ़ कोट (किच्चा) बनाकर (दुप्पधंसयं) शत्रुओं से अजय्य (तिगुत्तं) तीनगुप्तियों से उस कोट की रक्षा करनी चाहिये।

भावार्थ—नमिराजर्षि बोले कि हे देवेन्द्र! सम्पूर्ण गुणों की आधारभूत सत्य की श्रद्धा को नगर बनाया है, जिसके उपशम संवेग निर्वेद अनुकम्पा आस्था ये ५ दर्वाजे हैं। क्षमा मार्दव आर्जव निर्लोभतादि दश धर्म उस नगरी की रक्षा के लिए सुदृढ़ कोट-किला बनाया है। अनशन आदि छह प्रकार का बाह्य तप तथा कर्मास्त्रव के निरोधरूप संवर को उस कोट के आगल सहित किवाड़ बनाये हैं, और उस कोट की रक्षा के लिए शत्रुओं से अजय्य मनगुप्ति वचनगुप्ति और कायगुप्ति रूप बुर्ज खाई और तोपें तैयार की हैं। इसलिए कर्म रूपी शत्रु मेरी नगरी में प्रवेश नहीं कर सकते ॥ २० ॥

शत्रु से युद्ध करने के लिए कैसे शस्त्रकी आवश्यकता है, इसे बताते हैं–

गाथा–धणुं परक्कमं किच्चा, जीवं च ईरियं सया ।
धिइं च केयणं किच्चा, सच्चेणं पलिमंथए॥२१॥

छाया–धनुः पराक्रमं कृत्वा, जीवां चेर्यां सदा ।
धृतिं च केतनं कृत्वा, सत्येन प्रतिबध्नीयात् ॥२१॥

अन्वयार्थ–(सया) सदा **(परक्कमं)** पराक्रम को **(धणुं)** धनुष **(ईरियं)** ईर्यादि समिति को **(जीवं)** धनुष की डोरी **(च)** और **(धिइं)** धैर्य को **(केयणं)** धनुष का केतन अर्थात् मध्य में पकड़ने की मूठ **(किच्चा)** बनाकर उस धनुष को **(सच्चेण)** सत्य से **(पलिमंथए)** बांधना चाहिए ।

भावार्थ–पराक्रम को धनुष बनावे, और उसमें ईर्यासमिति आदि पांच समितियों की जीवा-डोरी स्थापन करे । धैर्यगुण को केतन बनावे। (धनुष के बीचमें वह काठ का भाग, जिसको मुट्ठी में पकड़ कर धनुष चलाया करते हैं, उसे केतन कहते हैं) उस धनुष को सत्यरूपी रस्सी से बांधना चाहिये । मुमुक्षु पुरुषों को इस प्रकार का धनुष धारण करना योग्य है ॥२१॥

पुनः क्या करना चाहिये, इस को दिखाते हैं–

गाथा–तवनारायजुत्तेणं, भेत्तूणं कम्मकंचुअं ।
मुणी विगयसंगामो, भवाओ परिमुच्चइ ॥२२॥

छाया–तपोनाराचयुक्तेन, भित्त्वा कर्मकञ्चुकम् ।
मुनिर्विगतसङ्ग्रामो, भवात्परिमुच्यते ॥२२॥

अन्वयार्थ–(तवनारायजुत्तेणं) उसधनुष में छह प्रकार का

अन्तरंग तपरूप बाण चढ़ाकर (कम्मकंचुअं) कर्मरूप कंचुक-सेना को (भेत्तूणं) भेदन कर के विजय प्राप्तकरे। इसप्रकार कर्मरूप सेना को जीतलेनेपर (मुणी) मुनीश्वर (विगयसंगामो) युद्धरहित होता हुआ (भवाओ) संसार से (परिमुच्चए) छूट जाता है।

भावार्थ—मुनि पराक्रमरूपी धनुष पर छहप्रकार का आभ्यंतरतपरूपी बाण चढ़ाकर कर्मशत्रु का नाश करे। कर्मशत्रु का नाश करनेपर फिर उसे कोई युद्ध करना शेष नहीं रहता है, और वह मुनि संसार से शीघ्र मुक्त हो जाता है, इसलिए हे देवेन्द्र! जो तुमने कोट किले आदि बनवाने को कहा है वे सब मैंने पहले ही बना रक्खे हैं। तुम्हारे कथनानुसार कोट किले आदि बनवाने से शारीरिक मानसिक दुःखों से मुक्ति नहीं हो सकती, किन्तु ऐसा करने से ही समस्त दुःखों से मुक्ति हो सकती है॥

इस प्रकार नमिराजर्षि के उत्तर देने पर क्या हुआ इसे दिखाते हैं—

गाथा—एयमट्ठं निसामित्ता, हेउकारणचोइओ।
तओ नमिं रायरिसिं, देविंदो इणमब्बवी॥२३॥

छाया—एतमर्थं निशम्य, हेतुकारणचोदितः।
ततो नमिं राजर्षिं, देवेन्द्र इदमब्रवीत्॥२३॥

अन्वयार्थ--(तओ) नमिराजर्षि के उत्तर देने पर (एयं) इस (अट्ठं) अर्थ को (निसामित्ता) सुनकर (हेउकारणचोइओ) हेतु और कारण से प्रेरित हुआ (देविन्दो) देवेन्द्र (नमिं) नमि (रायरिसिं) राजर्षि को (इणं) आगे कहे अनुसार (अब्बवी) बोला।

भावार्थ—देवेन्द्र ने नमिराजर्षि से कहा कि हे नमिराज! तुम क्षत्रिय हो, नगर की रक्षा करना तुम्हारा मुख्य कर्त्तव्य है इसलिए तुम इस

मिथिला नगरी की रक्षाके लिए कोट किले आदि बनवाओ। इस पर नमिराजर्षि ने उत्तर दिया कि हे देवेन्द्र! मैंने इन सब परिग्रहों का त्याग करके मुनि अवस्था धारण की है, इसलिए इनका मुझ से अब कोई सम्बन्ध नहीं रहा है। तथा मैंने तत्त्वश्रद्धा को नगरी बना कर क्षमा को कोट बनाया है इत्यादि। इस प्रकार कर्मशत्रु पर विजय पाने की सामग्री एकत्रित की है, इस से कर्मशत्रु को जीतकर संसार से मुक्त हो सकता हूँ। इस उत्तर को सुनकर देवेन्द्र पुनः प्रश्न करने को उद्यत हुआ ॥२३॥

देवेन्द्र ने क्या पूछा, इसे दिखाते हैं—

गाथा—पासाए कारइत्ताणं, वद्धमाणगिहाणि य।
वालग्गपोइयाओ य, तओ गच्छसि खत्तिया! ॥ २४ ॥

छाया—*प्रासादान् कारयित्वा, वर्द्धमानगृहाणि च।*
वलभीश्च, ततो गच्छसि(गच्छ) क्षत्रिय! ॥२४॥

अन्वयार्थ—(खत्तिया!) हे क्षत्रिय! **(पासए)** महल **(य)** और **(वद्धमाणगिहाणि)** छोटे बड़े अनेक घर **(य)** और **(वालग्गपोइयाओ)** वलभी अर्थात् घरों के शिखर--छज्जे **(कारइत्ताणं)** बनवाकर **(तओ)** पीछे **(गच्छसि)** जाओ अर्थात् दीक्षालो ॥

भावार्थ—हे क्षत्रिय! तुम बड़े बड़े सुन्दर महल और वास्तुशास्त्र के अनुसार रमणीय अनेक ढंग के छोटे बड़े भवन बनवाओ, और घरों पर मनोहर बंगलों और छज्जों की रचना करवाओ, तथा जलमें दर्शनीय मन्दिर बनवाओ, जिनको देखने के लिए बाहर के स्थानों से अनेक दर्शक आते जाते रहेंगे, इससे नगर की बड़ी शोभा होगी। इसलिए हे राजन्! तुम को इतना कार्य करके पीछे दीक्षा लेनी चाहिए ॥२४॥

भावार्थ—देवेन्द्र ने मिथिला नगरी की मनोहरता के लिए महलादि बनाना आवश्यक बताया। नमिराजर्षि ने उत्तर दिया कि यहां पर प्रासाद आदि वही बना सकता है, जिसको यहां पर रहने का निश्चय है। मैं तो इस अवस्था को गमन का मार्ग समझता हूँ। हे महाप्राज्ञ! तुम ही बताओ, क्या मार्ग में प्रासादादि बनवाना बुद्धिमत्ता है? मेरा निश्चित स्थान मोक्ष है, वहाँ पर गृह बनाने का मैं प्रयत्न कर रहा हूँ। जब यहाँपर रहने का ही मुझे निश्चय नहीं है, तब मैं यहाँ पर घर कैसे बना सकता। इस प्रकार हेतु कारण से प्रेरित हुआ देवेन्द्र नमिराजर्षि के प्रति कहने लगा॥२७॥

देवेन्द्र ने क्या कहा! इसे दिखाते हैं -

गाथा—आमोसे लोमहारे य, गंठिभेए य तक्करे।
णगरस्स खेमं काऊणं, तत्तो गच्छसि खत्तिया!
॥२८॥

छाया—*आमोषाँल्लोमहारांश्च, ग्रन्थिभेदाँस्तस्करान्।*
नगरस्य क्षेमं कृत्वा, ततो गच्छसि (गच्छ) क्षत्रिय! ॥२८॥

अन्वयार्थ—(**खत्तिया**) हे क्षत्रिय! (**आमोसे**) डाकुओं से (**लोमहारे**) मनुष्यों को मार कर लूटने वालों से (**गंठिभेए**) गांठ कतरने वालों से (**य**) और (**तक्करे**) नित्य चोरी करने वालों से (**णगरस्स**) नगर में (**खेमं**) सुख (**काउणं**) उत्पन्न करके (**तओ**) पश्चात् (**गच्छसि**) तुम जाओ, अर्थात् दीक्षा ग्रहण करो।

भावार्थ—देवेन्द्रने नमिराजर्षि से कहा, कि हे नमिराज! तुम को पहले डाकुओं से गांठ कतरने वालों से सदा चोरी करने वालों से प्राण-घात करके लूटने वालों से नगर की रक्षा करनी चाहिये, अर्थात्

पहले प्रजाको पीड़ा देने वाले दुष्टों का निग्रह कर के नगर में शान्ति उत्पन्न करनी चाहिये । नगर में सब प्रकार की सुख शान्ति हो जानेके बाद तुम को दीक्षा धारण करनी चाहिये । जबतक ये दुरात्मा नगर में बने रहेंगे तब तक नगर में सुख शान्ति नहीं हो सकेगी। नगर में सुख शान्ति उत्पन्न करना तुम्हारा कर्तव्य है, अतएव इन दुर्जनों का निग्रह तुम को अवश्य करना चाहिये ॥ २८ ॥

इस प्रकार देवेन्द्र के बोलने के बाद क्या हुआ, इसको दिखाते हैं—

गाथा--एयमट्ठं निसामित्ता, हेउकारणचोइओ ।
तओ नमी रायरिसी, देविंदमिणमब्बवी ॥२६॥

छाया--*एतमर्थं निशम्य, हेतुकारणचोदितः ।*
ततो नमी राजर्षिर्देवेन्द्रमिदमब्रवीत् ॥ २६ ॥

अन्वयार्थ--(**तओ**) देवेन्द्र के कहने के बाद (**एयं**) पूर्वोक्त (**अट्ठं**) अर्थ को (**निसामित्ता**)सुनकर (**हेउकारणचोइओ**) हेतु और कारण से प्रेरित हुए (**नमी**) नमि (**रायरिसी**) राजर्षि (**देविंदं**) देवेन्द्र को (**इणं**) इस प्रकार (**अब्बवी**) बोले ॥

भावार्थ--हे नमिराज ! मिथिलापुरी तुम्हारे आधीन है इसलिए इस में शान्ति स्थापन करने के लिए लुटेरे डाकू आदि दुर्जनों का निग्रह करना तुम्हारा परम कर्तव्य है । जब तक तुम अपने कर्तव्य का पालन न करलो तब तक तुम को दीक्षा नहीं ग्रहण करनी चाहिये। इस प्रकार इन्द्र के कहने पर नमिराजर्षि उत्तर देने में प्रवृत्त हुए ॥ २६ ॥

नमिराजर्षि ने क्या उत्तर दिया, इसे बताते हैं---

छाया—एतमर्थं निशम्य, हेतुकारणचोदितः ।
ततो नमिं राजर्षिं, देवेन्द्र इदमब्रवीत् ॥ २१ ॥

अन्वयार्थ--**(तओ)** नमिराजर्षि के उत्तर देने के पीछे **(एयं)** इस पूर्वोक्त **(अट्ठं)** अर्थ को **(निसामित्ता)** सुनकर **(हेउकारणचोइओ)** हेतु और कारण से प्रेरित हुआ **(देविंदो)** देवेन्द्र **(इणं)** आगे कहे अनुसार **(अब्बवी)** बोला ।

भावार्थ--देवेन्द्र ने नमिराजर्षि के प्रति कहा कि हे नमिराज! तुम राजा हो, प्रजामें सर्व प्रकार शान्ति उत्पन्न करना तुम्हारा मुख्य कर्तव्य है, इसलिए प्रजा में अशान्ति पहुँचानेवाले चोर लुटेरे आदि का उच्छेद करके पीछे दीक्षा धारण करो । इसप्रकार इन्द्र के कहने पर नमिराजर्षि बोले, हे देवेन्द्र! इसलोक में अज्ञानता आदि के कारण निरपराधियों को दण्ड और अपराधियों को छुटकारा पातेहुए कईवार देखा है। मैं इस प्रकार झूठी सजा देना नहीं चाहता। ऐसी दशा में चोर लुटेरे आदि को निकाल कर नगर में पूर्ण शान्ति स्थापित करना असम्भव है। जब नगर में पूरी तरह शान्ति ही नहीं हो सकती, तब नृपधर्म का पूरी तरह निर्वाह होना नितान्त असम्भव है। इसका आशय यह है कि मेरी आत्मारूप नगरी में पांच इन्द्रियाँ क्रोध मान माया लोभरूप चोर बस रहे हैं, ये आत्मा के दर्शन ज्ञान चारित्र रूप धन को लूट रहे हैं, इन को जीतने से ही शान्ति प्राप्त हो सकती है। इसलिए इनको जीतने का उपाय कर रहा हूँ, मैं असत्यदण्ड देकर अन्याय नहीं करना चाहता । इस प्रकार नमिराजर्षि का उत्तर सुनकर देवेन्द्र फिर पूछने लगा ॥२१॥

देवेन्द्र ने क्या पूछा, इसको दिखाते हैं---

गाथा–जे केइ पत्थिया तुब्भं, नानमंति नराहिवा।
वसे ते ठावइत्ता णं, तओ गच्छसि खत्तिया ! ॥३२॥

छाया–ये केचित्पार्थिवास्तुभ्यं, नानमन्ति नराधिप ! ।
वशे तान् स्थापयित्वा, ततो गच्छसि (गच्छ) क्षत्रिय! ॥३२॥

अन्वयार्थ–**(नराहिवा!)** हे राजन् ! **(ये)** जो **(केइ)** कोई **(पत्थिया)** राजा **(तुब्भं)** तुमको **(नानमंति)** नमस्कार नहीं करते हैं । **(ते)** उनको **(वसे)** वशमें **(ठावइत्ता णं)** स्थापन करके अर्थात् अधीन बनाकर **(खत्तिया!)** हे क्षत्रिय!तुम **(तओ)** पीछे **(गच्छसि)** दीक्षा धारण करो

भावार्थ–नमिराजर्षि के अन्तःकरण में द्वेष है या नहीं, इस बात की परीक्षा करने के लिए देवेन्द्र ने प्रश्न किया कि हे राजन्! जो राजा तुम्हारी आज्ञा नहीं मानते हैं। तुम को नमस्कार नहीं करते हैं। उन को वश में करके पीछे दीक्षा लेना योग्य है। नहीं तो वे शत्रुराजा तुम्हारे पीछे राज्य को छिन्न भिन्न कर देंगे। अथवा तुम्हारे पुत्र को अपने अधीन बनालेंगे। इस से अच्छा यही है कि तुम पहले शत्रुराजाओं को अपने वशमें करलो, क्योंकि भरत आदि राजाओं ने भी शत्रुओं को अपने वशमें करके पीछे दीक्षा ली है, इसलिए तुम्हें भी ऐसा ही करना चाहिये ॥३२॥

इस प्रकार देवेन्द्र के कहने पर क्या हुआ, इस को दिखाते हैं—

गाथा–एयमट्ठं निसामित्ता, हेउकारणचोइओ ।
तओ नमी रायरिसी, देविंदं इणमब्बवी ॥३३॥

छाया--एतमर्थं निशम्य, हेतुकारणचोदितः ।

ततो नमी राजर्षिर्देवेन्द्रमिदमब्रवीत् ॥३३॥

अन्वयार्थ--**(तओ)** देवेन्द्र के बोलने के बाद **(एयं)** पूर्वोक्त **(अट्ठं)** अर्थ को **(निसामित्ता)** सुनकर **(हेउकारणचोइओ)** हेतु और कारण से प्रेरित हुआ **(नमी)** नमि **(रायरिसी)** राजर्षि **(देविंदं)** देवेन्द्र को **(इणं)** आगे कहे अनुसार **(अब्बवी)** कहा॥

भावार्थ--देवेन्द्र बोला कि हे नमिराज! तुम क्षत्रिय हो, इसलिए तुम्हारा धर्म है कि पहले शत्रुराजाओं को वश में करके पीछे दीक्षा धारण करो; क्योंकि भरत आदि नृपतियों ने भी पहले समस्त विरोधी राजाओं को जीत कर पश्चात् दीक्षा ग्रहण की है। इसप्रकार देवेन्द्र के द्वारा कहे गये हेतु और कारण से प्रेरित हुआ नमिराजर्षि देवेन्द्र को उत्तर देने में तत्पर हुआ ॥३३॥

नमिराजर्षि ने क्या उत्तर दिया, इसे दिखाते हैं—

गाथा--जो सहस्सं सहस्साणं, संगामे दुज्जए जिणे ।

एगं जिणेज्ज अप्पाणं, एस से परमो जओ ॥३४॥

छाया--यः सहस्रं सहस्राणां, संग्रामे दुर्जये जयेत् ।

एकं जयेदात्मानमेष तस्य परमो जयः ॥३४॥

अन्वयार्थ--**(जो)** जो पुरुष **(दुज्जए)** दुर्जय **(संगामे)** संग्राम में **(सहस्साणं सहस्सं)** दश लाख सुभटों को **(जिणे)** जीतता है, और जो पुरुष **(एगं)** एक **(अप्पाणं)** आत्मा को **(जिणेज्ज)** जीतता है, इन दोनों में से **(से)** आत्मा को जीतने वाले का **(एस)** आगे कहागया **(जओ)** जय **(परमो)** उत्कृष्ट है।

भावार्थ–जिस का जीतना अति कठिन है ऐसे भयंकर युद्ध में जो पुरुष दश लाख योद्धाओं पर विजय प्राप्त करलेता है, और जो पुरुष दु-राचार में लगी हुई केवल अपनी आत्मा को वश में करता है। इन दोनों में आत्मा को जीतने वाले की परम विजय है। इसलिए हे देवेन्द्र! अन्य शत्रुगणों को जीतने की अपेक्षा आत्मा का जीतना ही जीतना है। जिसने दूसरों को जीत लिया, और अपनी आत्मा को ही नहीं जीता है। वह वीर नहीं है, क्योंकि विषय कषाय में प्रवृत्त हुई आत्मा ही दुःख का कारण है और दूसरे पदार्थ नहीं हैं, अतः इस को जीतना ही विजय है। इस कथन द्वारा आत्मा को दुर्जेय बताया है ॥३४॥

तथा—

गाथा–अप्पाणमेव जुज्झाहि, किं ते जुज्झेण बज्झओ?।
अप्पाणमेव अप्पाणं, जिणित्ता सुहमेहए ॥३५॥

छाया–आत्मनैव युध्यस्व, किं तव युद्धेन बाह्यतः?।
आत्मनैवात्मानं, जित्वा सुखमेधते ॥३५॥

अन्वयार्थ–हे देवेन्द्र (अप्पाणमेव) आत्मा ही के साथ (जुज्झाहि) युद्ध करना चाहिए (बज्झओ) बाहर के (जुज्झेण) युद्ध से (ते) तुम्हारा (किं) क्या होता है अर्थात् कुछ भी प्रयोजन सिद्ध नहीं हो सकता। (अप्पाणमेव) आत्मा से ही (अप्पाणं) आत्मा को (जिणित्ता) जीतने से (सुहं) सुख (एहए) प्राप्त होता है।

भावार्थ–नमि राजर्षि देवेन्द्र से कहते हैं कि, हे महाप्राज्ञ! आत्मा से युद्ध करो, अर्थात् दुराचार में प्रवृत्त हुई अपनी आत्मा को वश में करो। बाहर के युद्ध से क्या लाभ है?। क्योंकि विषय कषाय में लगी आत्मा को ज्ञान द्वारा अपने वश में कर लेने से कर्मों का क्षय

होकर अनुपम अनन्त सुख की प्राप्ति होती है। इसलिए अपनी आत्मा को जीतने से ही उत्तम सुख प्राप्त हो सकता है ।

आत्मा ही को जीतने से सुखकी प्राप्ति कैसे होती है, इसको दिखाते है—

गाथा—पंचिंदियाणि कोहं, माणं मायं तहेव लोहं च ।
दुज्जयं चेव अप्पाणं, सव्वमप्पे जिए जियं ॥३६॥

छाया— पञ्चेन्द्रियाणि क्रोधो मानो माया तथैव लोभश्च ।
दुर्जयश्चैवात्मा सर्वमात्मनि जिते जितम् ॥ ३६ ॥

अन्वयार्थ— (**पंचिंदियाणि**) पांच इन्द्रियाँ (**कोहं**) क्रोध (**माणं**) मान (**मायं**) माया (**तहेव**) इसीप्रकार (**लोहं**) लोभ (**चेव**) तथा (**दुज्जयं**) दुर्जेय (**अप्पाणं**) मन (**सव्वं**) ये सब (**अप्पे**) आत्मा के (**जिए**) जीतने पर (**जियं**) जीत लिये जाते हैं ।

भावार्थ— पांच इन्द्रियाँ क्रोध मान माया लोभ मिथ्यात्व अन्तः करण अविरति प्रमाद कषाय योग इन सब को जीतना अति कठिन है। किन्तु ये सब एक दुर्जय आत्मा को जीत लेने पर जीत लिए जाते हैं। अर्थात् जिस ने एक आत्मा को जीत लिया है उसने सम्पूर्ण शत्रुओं को जीत-लिया है। इसलिए आत्मा पर विजय प्राप्त करना श्रेष्ठ है। बाहर के शत्रु-ओं को जीतने से क्या होता है। उक्त कथन द्वारा यह बात प्रकट की गई है कि इन्द्रिय क्रोध आदि आत्मा को दुःख देने वाले हैं और दुर्जय हैं। इन को जीतने पर ही विजय पद प्राप्त हो सकता है। इस प्रकार नमिरा-जर्षि ने देवेन्द्र के प्रश्न का उत्तर दिया। अर्थात् देवेन्द्र ने शत्रु राजाओं को जीतने का उपदेश किया था। नमिराजर्षि ने युक्तिपूर्वक उसका समा-धान किया ॥३६॥

इसके बाद क्या हुआ, इसे दिखाते हैं—

गाथा—एयमट्ठं निसामित्ता हेउकारणचोइओ।
तओ नमिं रायरिसिं, देविंदो इणमब्बवी ॥३७॥

छाया—एतमर्थं निशम्य, हेतुकारणचोदितः।
ततो नमिं राजर्षिं, देवेन्द्र इदमब्रवीत् ॥३७॥

अन्वयार्थ—(तओ) नमिराजर्षि के उत्तर देने के बाद (एयं) इस (अट्ठं) अर्थ को (निसामित्ता) सुनकर (हेउकारणचोइओ) हेतु और कारण से प्रेरित हुआ (देविंदो) देवेन्द्र (नमिं) नमि (रायरिसिं) राजर्षि को (इणं) आगे कहे अनुसार (अब्बवी) बोला॥

भावार्थ—देवेन्द्र ने कहा कि हे नमिराज! तुमको पहले शत्रु राजाओं को वश में करके पीछे दीक्षा लेनी चाहिये। क्योंकि शत्रु पर विजय प्राप्त करना क्षत्रिय का मुख्य कर्तव्य है। नमिराजर्षि ने इस का उत्तर दिया कि हे देवेन्द्र! बाहर के शत्रुओं को जीतने से क्या होता है, असली शत्रु अपनी आत्मा है। जिसने इन्द्रिय कषाय मिथ्यात्व आदि में प्रवृत्त हुई अपनी आत्मा को जीत लिया है, उसने सब कुछ जीत लिया है। इसलिए आत्मा को जीतना ही श्रेयस्कर है। इस उत्तर को सुनकर हेतु और कारण से प्रेरित हुआ देवेन्द्र, नमिराजर्षि की जैनधर्म पर श्रद्धा कैसी है, इस की परीक्षा करने के लिए नमिराजर्षि से पूछने लगा ॥३७॥

इन्द्र ने क्या पूछा, इसको बताते हैं—

गाथा—जइत्ता विउले जन्ने, भोइत्ता समणमाहणे।
दच्चा भुच्चा य जट्ठा य, तओ गच्छसि खत्तिया!

छाया—याजयित्वा विपुलान् यज्ञान्, भोजयित्वा श्रमणब्राह्मणान् ।
दत्त्वा भुक्त्वा चेष्ट्वा च, ततो गच्छसि (गच्छ) क्षत्रिय!
॥३८॥

अन्वयार्थ—**(खत्तिया!)** हे राजन्! **(विउले)** बड़े बड़े **(जन्ने)** यज्ञ **(जइत्ता)** करवाकर **(समणमाहणे)** साधु ब्राह्मणों को **(भोइत्ता)** भोजन करवाकर **(य)** और स्वयं **(दच्चा)** ब्राह्मण आदि को स्वर्ण भूमि आदि का दान देकर **(भुच्चा)** इन्द्रिय के विषयों का भोग करके **(य)** तथा **(जट्टा)** स्वयं यज्ञ करके **(तओ)** पीछे **(गच्छसि)** जाओ ॥

भावार्थ--हे राजन ! तुमको पहले बड़े बड़े यज्ञ करवाने चाहिये । साधु संन्यासियों और ब्राह्मणों को भोजन दिलाना चाहिये । अपने हाथ से यज्ञ करना चाहिये । ब्राह्मण साधु आदि को सुवर्ण गौ भूमि आदि का दान देना चाहिये । तथा इन्द्रियों के मनोज्ञ विषयों का आनन्द लेना चाहिये । इसके बाद दीक्षा लेना योग्य है । क्योंकि जो कार्य प्राणियों को आनन्द देने वाले हैं वे सब धर्म रूप होते हैं । जैसे अहिंसा आदि व्रत । यज्ञ दान आदि भी प्राणियों को सुखकर हैं, इसलिए ये भी धर्मस्वरूप हैं ॥ ३८ ॥

इस प्रकार देवेन्द्र के कहने पर क्या हुआ, इसे दिखाते हैं—

गाथा--**एयमट्ठं निसामित्ता, हेउकारणचोइओ ।**
तओ नमी रायरिसी, देविन्दं इणमब्बवी ॥३९॥

छाया--एतमर्थं निशम्य, हेतुकारणचोदितः ।
ततो नमी राजर्षिर्देवेन्द्रमिदमब्रवीत् ॥३९॥

अन्वयार्थ--(**तओ**) देवेन्द्र के उत्तर देने के बाद (**एयं**) पूर्वोक्त(**अट्ठं**) अर्थ को(**निसामित्ता**) सुनकर (**हेउकारणचोइओ**) हेतु और कारण से प्रेरित हुए (**नमी**) नमि (**रायरिसी**) राजर्षिने (**देविंदं**)देवेन्द्र को (**इणं**)आगे कहे अनुसार (**अब्बवी**) कहा ॥

भावार्थ--देवेन्द्र ने कहा कि हे नमिराज!जिस कार्य के करनेसे जीवों को सुख होता है वही धर्म है। जैसे अहिंसादि व्रत के पालने से जीवों को सुख मिलता है, इस लिए वह धर्म माना गया है। इसी प्रकार साधु संन्यासी ब्राह्मण आदि को सुवर्ण पृथिवी आदि का दान देने से यज्ञादि करने से जीवों को सुख प्राप्त होता है,इसलिये ये कार्य भी धर्म रूप हैं। अतः तुमको यज्ञ दान और इंद्रिय के विषयों का सेवन करके पश्चात् दीक्षा धारण करनी चाहिये। इस प्रकार हेतु और कारण से प्रेरित होकर नमि राजर्षि उत्तर देने में तत्पर हुए ॥ ३९ ॥

नमि राजर्षि ने क्या उत्तर दिया, इसे दिखाते हैं—

गाथा--जो सहस्सं सहस्साणं,मासे मासे गवं दए।
तस्सावि संजमो सेओ, अदिंतस्सवि किंचणं॥४०॥

छाया--यः सहस्रं सहस्राणां, मासे मासे गवां दद्यात्।
तस्यापि संयमः श्रेयान्, अददतोपि किञ्चन ॥ ४०॥

अन्वयार्थ--(**जो**) जो मनुष्य (**मासे मासे**) प्रत्येक मास में (**सहस्साणं सहस्सं**) दश लाख (**गवं**) गायों का (**दए**) दान करता है,(**तस्सावि**) उस दाता को भी (**संजमो**) संयम धारण करना (**सेओ**) श्रेयस्कर है, तथा (**किंचणं**) किसी वस्तु का (**अदिंतस्सवि**) दान नहीं करने वाले का भी संयम पालन उक्त दान की अपेक्षा श्रेष्ठ है।

भावार्थ—हे देवेन्द्र! जो मनुष्य प्रत्येक मास में दश लाख गौओं का दान किया करता है, यदि वही मनुष्य काल पाकर संयम धारण करले, तो उस का संयम पालन पूर्व दान की अपेक्षा अत्यन्त प्रशंसनीय है। अथवा कुछ भी दान नहीं करने वाला संयमी, गौ सुवर्ण भूमि आदि का अटूट दान तथा अनेक यज्ञ करने वाले की अपेक्षा अधिक श्रेष्ठ है। क्योंकि गोदान यज्ञ आदि से जीवों का घात होता है, और जिन कार्यों से जीवों का घात होता है, वे प्राणियों को दुःख देने वाले होते हैं। इसलिए यज्ञ दान आदि जीवों को दुःख देने वाले हैं। इन को सुखदायी बनाना भारी भूल है ॥४०॥

इस प्रकार नमि राजर्षि के उत्तर देने पर क्या हुआ, इसको दिखाते हैं—

गाथा—एयमट्ठं निसामित्ता, हेउकारणचोइओ।
तओ नमिं रायरिसिं, देविंदो इणमब्बवी ॥४१॥

छाया—*एतमर्थं निशम्य, हेतुकारणचोदितः।*
ततो नमिं राजर्षिं, देवेन्द्र इदमब्रवीत् ॥४१॥

अन्वयार्थ—(**तओ**) नमि राजर्षि के उत्तर देने पर (**एयं**) पूर्वोक्त (**अट्ठं**) अर्थ को (**निसामित्ता**) सुनकर (**हेउकारणचोइओ**) हेतु और कारण से प्रेरित हुआ (**देविंदो**) देवेन्द्र (**नमिं**) नमि (**रायरिसिं**) राजर्षि को (**इणं**) आगे कहे अनुसार (**अब्बवी**) बोला।

भावार्थ—नमि राजर्षि बोले कि हे देवेन्द्र! जो मनुष्य हरएक महीने में दश लाख गौओं का दान किया करता है, उसकी अपेक्षा संयम पालन करने वाला अधिक प्रशंसनीय है; क्योंकि गोदान यज्ञ आदि कार्यों से पाप उत्पन्न होता है। जिन से पाप उत्पन्न होता है, वे कार्य जीवों को सुखद नहीं हो सकते, जैसे हिंसा आदि। तुम से बताए गये यज्ञ गोदान आदि

[illegible] कर्म पापजनक है, इसलिए प्राणियों को दुःख देने वाले [illegible] के सुख से इस को सुखदायी कहना है यह अज्ञानमूलक है। इस प्रकार नमि राजर्षि के उत्तर को सुनकर देवेन्द्र को निश्चय हुआ कि इन का वैराग्य सच्चा है, किन्तु मुनिदीक्षा में कितनी दृढ़ता है, इस बात की परीक्षा करने के लिए देवेन्द्र पुनः बोला ॥ ४१ ॥

देवेन्द्र क्या बोला, सो लिखते हैं --

गाथा--घोरासमं चइत्ता णं, अन्नं पत्थेसि आसमं।
इहेव पोसहरओ, भवाहि मणुयाहिवा! ॥४२॥

छाया--*घोराश्रमं त्यक्त्वा अन्यं प्रार्थयसे आश्रमम्।*
इहैव पौषधरतो, भव मनुजाधिप! ॥४२॥

अन्वयार्थ--(**मणुयाहिवा!**) हे नरेन्द्र! तुम (**घोरासमं**) घोर गृहस्थाश्रम को (**चइत्ता णं**) त्याग कर (**अन्नं**) दूसरे (**आसमं**) मुनि आश्रम की (**पत्थेसि**) अभिलाषा करते हो, किन्तु तुम को (**इहेव**) इस गृहस्थाश्रम में ही (**पोसहरओ**) पौषध व्रत आदि में तल्लीन (**भवाहि**) होना चाहिए॥

भावार्थ--हे नमीश ! शास्त्रों में चार आश्रम बताये हैं, ब्रह्मचर्याश्रम गृहस्थाश्रम वानप्रस्थाश्रम और सन्यास (भिक्षु) आश्रम। इन चारों में गृहस्थाश्रम अत्यन्त भयङ्कर है, इस का पालन शूर वीर ही कर सकते हैं, कायरपुरुष इस के दुःखों से घबराकर इस को छोड़ कर भाग जाते हैं, क्योंकि गृहस्थाश्रम में मनुष्य को परिश्रम करके अपना और अपने आश्रित पुरुषों का उदर पूरण करना पड़ता है। इसलिए बलवान् और परिश्रमी मनुष्य ही गृहस्थधर्म का पालन कर सकता है, बल हीन और आलसी मनुष्य इस का पालन नहीं कर सकता। ऐसा कहा भी है---

गृहस्थाश्रमसमो धर्मो, न भूतो न भविष्यति।
पालयंति नराः शूराः, क्लीबाः पाखण्डमाश्रिताः ॥१॥

अतएव हे नमिराज! तुम शूर वीर हो, तुम को गृहस्थाश्रम में रह कर अणुव्रत का पालन करना चाहिये। और अष्टमी चतुर्दशी आदि पर्व-तिथियों में पौषध व्रत धारण करना चाहिये। किन्तु जो तुमने इस को छोड़कर मुनिदीक्षा धारण करने की अभिलाषा की है, यह ठीक नहीं है। क्योंकि जो जो कार्य कठिन हैं, वे धर्मार्थी पुरुषों के आचरण करने योग्य हैं, जैसे अनशन (उपवास) आदि तप। गृहस्थाश्रम भी अत्यन्त कठिन है। इसलिये धर्मार्थी पुरुषों को इस का आचरण करना परमावश्यक है ॥ ४२ ॥

इस प्रकार देवेन्द्र के बोलने पर क्या हुआ, इस को दिखाते हैं—

गाथा—एयमट्ठं निसामित्ता, हेउकारणचोइओ।
तओ नमी रायरिसी देविंदं इणमब्बवी ॥ ४३ ॥

छाया—एतमर्थं निशम्य हेतुकारणचोदितः।
ततो नमी राजर्षिर्देवेन्द्रमिदमब्रवीत् ॥ ४३ ॥

अन्वयार्थ—(तओ) देवेन्द्र के बोलने के पश्चात् **(एयं)** पूर्वोक्त **(अट्ठं)** अर्थ को **(निसामित्ता)** सुनकर **(हेउकारणचोइओ)** हेतु और कारण से प्रेरित हुआ **(नमी)** नमि **(रायरिसी)** राजर्षि **(देविंदं)** देवेन्द्र को **(इणं)** आगे कहे अनुसार **(अब्बवी)** बोला ॥

भावार्थ—देवेन्द्र बोला कि, हे नमिराज! गृहस्थाश्रम का पालन करना अति कठिन है। इस का पालन शूरवीर पुरुष ही कर सकते हैं। कायर इस को छोड़कर भाग जाते हैं। क्योंकि इस में पुरुषार्थ द्वारा

अपना निर्वाह किया जाता है। भीख मांग कर जीविका करना गृहस्था-श्रम में निषिद्ध है। तुम शूरवीर और धर्मार्थी हो, इसलिए तुम को गृह-स्थधर्म का पालन करना चाहिये। क्योंकि जो भयङ्कर कार्य होते हैं, उन का पालन धर्मार्थी पुरुष किया करते हैं। गृहस्थाश्रम भी एक कठिन कर्त-व्य है, इसलिए तुम को इस का पालन करना चाहिए। इस प्रकार देवे-न्द्र का वचन सुनकर हेतु व कारण से प्रेरित हुआ नमि राजर्षि, देवेन्द्र को उत्तर देने के लिए प्रवृत्त हुआ ॥४३॥

नमि राजर्षि ने क्या उत्तर दिया, इस को बताते हैं—

गाथा—मासे मासे उ जो बालो, कुसग्गेणं तु भुंजइ।
न सो सुअक्खायधम्मस्स, कलं अग्घइ सोलसिं ॥४४॥

छाया—मासे मासे तु यो बालः कुशाग्रेण तु भुङ्क्ते।
न स स्वाख्यातधर्मस्य, कलामर्हति षोडशीम् ॥४४॥

अन्वयार्थ—(जो) जो **(बालो)** अज्ञानी **(मासे मासे उ)** एक एक महीने में **(कुसग्गेणं तु)** केवल कुश के अग्रभाग बराबर **(भुंजइ)** भोजन करता है **(सो)** वह **(सुअक्खायधम्मस्स)** तीर्थंकर भगवान् से कहे गये चारित्र धर्म की **(सोलसिं)** सोलहवीं **(कलं)** कला-भाग के भी **(न अग्घइ)** योग्य नहीं है ॥

भावार्थ—हे महाप्राज्ञ! जो अज्ञानी मनुष्य एक एक महीने का अन-शन तप करता है और पारणा के दिन कुश के अग्र भाग बराबर भो-जन करता है। वह मनुष्य तीर्थंकर भगवान् के वर्णन किये हुए चारित्र धर्म के सोलहवें भाग की भी तुलना नहीं करसकता। यद्यपि अज्ञानी का तप कायक्लेशकारी है, तथापि सावद्यमय होने से धार्मिक पुरुषों के

आचरण करने योग्य नहीं है। क्योंकि जो कार्य कष्टप्रद होते हैं, वे सब पालने करने योग्य होते हैं, ऐसा नहीं है। किन्तु जिस धर्म का तीर्थकर भगवान् ने उपदेश दिया है, वही आचरण करने योग्य होता है। दूसरे सावद्यमय (पापमय) होने से जीवहिंसा की तरह पालन करने योग्य नहीं हैं। गृहस्थाश्रम भी सावद्यमय है, इसलिए धर्मार्थियों को इस का पालन करना योग्य नहीं है। समस्त सावद्यरहित एक संयम ही है। इसलिए उसी का पालन करना धर्मात्माओं का मुख्य कर्त्तव्य है। इस प्रकार नमिराजर्षि ने देवेन्द्र को उत्तर दिया ॥४४॥

इसके बाद क्या हुआ, इस को दिखाते हैं—

गाथा—एयमट्ठं निसामित्ता, हेउकारणचोइओ ।

तओ नमिं रायरिसिं, देविंदो इणमब्बवी ॥४५॥

छाया—एतमर्थं निशम्य, हेतुकारणचोदितः ।

ततो नमिं राजर्षिं, देवेन्द्र इदमब्रवीत् ॥४५॥

अन्वयार्थ—(तओ) नमिराजर्षि के उत्तर देने के बाद **(एयं)** पूर्वोक्त **(अट्ठं)** अर्थ को **(निसामित्ता)** सुनकर **(हेउकारणचोइओ)** हेतु और कारण से प्रेरित हुए **(देविंदो)** देवेन्द्र ने **(नमिं)** नमि **(रायरिसिं)** राजर्षि को **(इणं)** आगे कहे अनुसार **(अब्बवी)** कहा।

भावार्थ—देवेन्द्र ने कहा कि हे नमिराज ! तुम को गृहस्थाश्रम में रहना चाहिए। गृहस्थाश्रम का पालन वीर पुरुष ही कर सकते हैं। कायर पुरुष तो इस से घबराकर दूर भागते हैं। तुम वीर पुरुष हो, अतः तुम्हें गृहस्थाश्रम में रहकर अणुव्रत पौषधव्रत आदि गृहस्थधर्म का पालन करना चाहिए। नमि राजर्षि ने इस का उत्तर दिया कि हे देवेन्द्र ! गृहस्थ धर्म सावद्यमय है, इसलिए आत्महितैषी पुरुषों को यह उपादेय नहीं हो सकता। जैसे जीववध सावद्यमय है, इसी तरह [illegible] धर्म भी

सावद्यमय है। तीर्थंकर भगवान् से कहा हुआ एक सकल संयम ही सा-वद्य रहित है। इसलिए आत्महितेच्छुओं को इसी सकल चारित्र का पा-लन करना चाहिये। इस प्रकार हेतु और कारण से प्रेरित हुआ देवेन्द्र, पुनः नमि राजर्षि के राग की परीक्षा करने के लिये निम्नप्रकार बोला॥

देवेन्द्र क्या बोला, इसे दिखाते हैं—

गाथा—हिरण्णं सुवण्णं मणिमुत्तं, कंसं दूसं च वाहणं।
कोसं च वड्ढइत्ताणं, तओ गच्छसि खत्तिया!॥४६॥

छाया—*हिरण्यं सुवर्णं मणिमुक्तं कांस्यं दूष्यं च वाहनम्।*
कोषं वर्धयित्वा ततो गच्छसि (गच्छ) क्षत्रिय!॥४६॥

अन्वयार्थ—(**खत्तिया!**) हे क्षत्रिय! (**हिरण्णं**) घड़ा हुआ सोना (**सुवण्णं**) बिना घड़ा हुआ सोना (**मणिमुत्तं**) मणि मोती (**कंसं**) कांसा (**दूसं**) वस्त्र (**वाहणं**) हाथी घोड़े आदि वाहन (**च**) और (**कोसं**) कोष (**वड्ढइत्ताणं**) बढ़ाकर (**तओ**) इस के बाद (**गच्छसि**) जाओ अर्थात् दीक्षा लो॥

भावार्थ—हे मनुजेन्द्र! तुम को सोने के आभूषण, बिना घड़ा हुआ सोना, माणिक मोती हाथी घोड़े रथ आदि वस्तुओं से कोष-भण्डार बढ़ा-ना चाहिये। क्योंकि राजाओं का असली बल कोष है। जिस राजा के पास कोष नहीं है, वह सदा पराभव को प्राप्त होता है। इसलिए हे नमिराज! तुम को अपने राज कुल की रक्षा के लिए पहले भण्डार को बढ़ाकर पीछे दीक्षा लेनी चाहिये। क्योंकि तुमने आवश्यकीय चांदी सोना माणिक मोती आदि से कोष की वृद्धि नहीं की है, और कोष की वृद्धि करना तुम्हारा मुख्य कर्त्तव्य है। इसलिए तुम्हें अपनी इच्छा को पूर्ण

करने के लिए कोष की वृद्धि करके पश्चात् दीक्षा लेनी चाहिये ॥ ४६ ॥

इस प्रकार देवेन्द्र के बोलने पर क्या हुआ, इस को कहते हैं—

गाथा--एयमट्ठं निसामित्ता, हेउकारणचोइओ ।
तओ नमी रायरिसी, देविंदं इणमब्बवी ॥ ४७ ॥

छाया—*एतमर्थं निशम्य, हेतुकारणचोदितः ।*
ततो नमी राजर्षिर्देवेन्द्रमिदमब्रवीत् ॥ ४७ ॥

अन्वयार्थ--**(तओ)** देवेन्द्र के बोलने के बाद **(एयं)** पूर्वोक्त **(अट्ठं)** अर्थ को **(निसामित्ता)** सुन कर **(हेउकारणचोइओ)** हेतु और कारण से प्रेरित हुए **(नमी)** नमि **(रायरिसी)** राजर्षि ने **(देविंदं)** देवेन्द्र को **(इणं)** आगे कहे अनुसार **(अब्बवी)** कहा ॥

भावार्थ--देवेन्द्र ने कहा कि हे नमिराज ! तुम राजा हो, कोष की वृद्धि करना तुम्हारा मुख्य धर्म है । जिस राजा का भण्डार खाली होता है, उस को और उस के कुल को अनेक आपत्तियों का सामना करना पड़ता है । और जो राजा कोष से परिपूर्ण होता है उस का वंश सदा आनन्द का अनुभव करता है । इसलिए तुम्हें अपनी विषय की इच्छा पूर्ण करने के लिए कोष की वृद्धि करके पीछे दीक्षा लेनी चाहिये । इस प्रकार हेतु और कारण से प्रेरित हुए नमि राजर्षि उत्तर देने में प्रवृत्त हुए ॥४७॥

नमि राजर्षि ने क्या उत्तर दिया, इसे बताते हैं—

गाथा--सुवण्ण रूप्पस्स य पव्वया भवे,
सिया हु केलाससमा असंखया ।
नरस्स लुद्धस्स न तेहिं किंचि,
इच्छा हु आगाससमा अणंतया ॥४८॥

छाया--सुवर्णस्य रूप्यस्य तु पर्वता भवेयुः,
स्यात् खलु कैलाससमा असंख्यकाः ।
नरस्य लुब्धस्य न तैः किंचि-
दिच्छा खलु आकाशसमा अनन्तका ॥ ४८ ॥

अन्वयार्थ--जो (**सुवण्ण**) सोने (**य**) और (**रूप्पस्स**) चांदी के (**पव्वया**) छोटे २ पर्वतों के समान ढेर (**भवे**) हैं वे (**सिया**) कदाचित् (**हु**) निश्चय से (**केलाससमा**) कैलास पर्वत के समान (**असंखया**) असंख्य हो जावें, तो भी (**तेहिं**) वे कैलास के समान बड़े २ ढेर (**लुद्धस्स**) लोभी (**नरस्स**) मनुष्य को (**न किंचि**) संतोष उत्पन्न नहीं कर सकते । (**हु**) क्योंकि (**इच्छा**) इच्छा (**आगाससमा**) आकाश के समान (**अणंतया**) अनन्त होती है ॥

भावार्थ—हे देवेन्द्र! किसी लोभी मनुष्य के पास चांदी सोने के छोटे २ ढेर हों, और उन की जगह यदि दैवयोग से कैलास पर्वत के समान बड़े २ असंख्यात सोने चांदी के ढेर हो जावें, तो भी उस लोभी मनुष्य को उन से कभी सन्तोष नहीं हो सकता । क्योंकि ज्यों ज्यों परिग्रह बढ़ता जाता है, त्यों त्यों तृष्णा भी बढ़ती जाती है, तृष्णा आकाश के समान अपार है । इसलिये उसका पूर्ण होना असंभव है। ऐसा कहा भी है—

न तुष्टिरिह शताज्जन्तोर्न सहस्राच्च कोटितः ।
न राज्यान्नैव देवत्वान्नेन्द्रत्वादपि विद्यते ॥ १ ॥

इसी बात को फिर भी दिखाते हैं —

गाथा--पुढवी साली जवा चेव, हिरएणं पसुभिस्सह ।
पडिपुन्नं नालमेगस्स इइ, विज्ञा तवं चरे ॥ ४९ ॥

प्रतिपूर्णं नालमेकस्येति विदित्वा (विद्वान्) तपश्चरेत्॥४६॥

अन्वयार्थ--(**पुढवी**) पृथ्वी (**साली**) शालि-चाँवल (**जवा**) जौ (**च**) और (**पसुभिः**) पशुओं के (**सह**) साथ (**हिरण्णं**) सुवर्ण (**पडिपुन्नं एव**) ये सभी पदार्थ मिलकर भी (**एगस्स**) एक प्राणी की इच्छा को पूर्ण (**न अलं**) नहीं कर सकते (**इइ**) ऐसा (**विज्जा**) जानकर विद्वान् पुरुष (**तवं**) तप का (**चरे**) आचरण करें ॥

भावार्थ--पृथ्वी चाँवल जौ पशु सुवर्ण इत्यादि सम्पूर्ण पदार्थ मिलकर भी एक प्राणी की इच्छा को पूर्ण नहीं कर सकते, ऐसा समझकर विद्वान् पुरुषों को चाहिए कि सम्पूर्ण परिग्रह का त्याग करके बारह प्रकार के तप का आचरण करें। क्योंकि परिग्रह से इच्छा की पूर्ति नहीं होती है, किन्तु संतोष से ही होती है। इसलिए संतोष धारण करके आत्म हित के लिये तप का पालन करना चाहिये। ॥४६॥

इस प्रकार नमिराजर्षि के उत्तर देने पर क्या हुआ, इस को दिखाते हैं--

गाथा--**एयमट्ठं निसामित्ता, हेउकारणचोइओ।**
तओ नमिं रायरिसिं, देविन्दो इणमब्बवी॥५०॥

छाया--एतमर्थं निशम्य, हेतुकारणचोदितः।
ततो नमिं राजर्षिं देवेन्द्र इदमब्रवीत्॥५०॥

अन्वयार्थ--(**तओ**) नमि राजर्षि के उत्तर देने के बाद (**एयं**) पूर्वोक्त (**अट्ठं**) अर्थ को (**निसामित्ता**) सुनकर (**हेउकारणचोइओ**) हेतु और कारण से प्रेरित हुआ (**देविंदो**) देवेन्द्र (**नमिं**) नमि (**रायरिसिं**) राजर्षि से (**इणं**) आगे कहे अनुसार (**अब्बवी**) बोला ॥

भावार्थ--देवेन्द्र ने कहा था कि हे नमिराज! तुम को चांदी सोना मणि मुक्ता आदि पदार्थों से कोष की वृद्धि करनी चाहिये, और उस कोष से अपनी इच्छा पूर्ण करके पीछे दीक्षा लेनी चाहिये ! नमिराजर्षि ने इसका उत्तर दिया कि हे देवेन्द्र! सोना चांदी मणि मुक्ता आदि वस्तुओं से इच्छा बढ़ती है; क्योंकि एक इच्छा पूर्ण होने से दूसरी इच्छा उत्पन्न हो जाती है। इस तरह एक के बाद एक इच्छा की उत्पत्ति होते रहने से इसका कभी अंत नहीं होता है। केवल सन्तोष से ही इच्छा का अंत हो सकता है। इसलिये मैंने संतोष धारण कर लिया है, अर्थात् मैं इच्छा के निरोध (रोकना)रूप तपका आचरण कर रहा हूं। इस प्रकार नमि राजर्षि के उत्तर को सुनकर देवेन्द्र को निश्चय हुआ, कि अविद्यमान विषयोंमें इसकी इच्छा नहीं है,किन्तु वर्तमानविषयों में राग है या नहीं इस बात की परीक्षा करने के लिए देवेन्द्र प्रवृत्त हुआ॥ ५० ॥

देवेन्द्र ने क्या कहा, इस को बताते हैं--

गाथा--अच्छेरगमब्भुदए, भोए चयसि पत्थिवा! ।
असंते कामे पत्थेसि, संकप्पेण विहम्मसि ॥५१॥

छाया--*आश्चर्यमद्भुतकान्, भोगान् त्यजसि पार्थिव! ।*
असतः कामान् प्रार्थयसे संकल्पेन विहन्यसे ॥५१॥

अन्वयार्थ--(**पत्थिवा!**) हे महीपते! (**अच्छेरगं**) आश्चर्य है कि तुम (**अब्भुदए**) आश्चर्यकारी (**भोए**) भोगों को (**चयसि**) छोड़ रहे हो, तथा (**असंते**) अविद्यमान (**कामे**) कामों की (**पत्थेसि**) अभिलाषा कर रहे हो, यह और भी अधिक आश्चर्य है (**संकप्पेण**) तुम इस विकल्प से (**विहम्मसि**) दुःख भोगोगे ॥

नमिराजर्षि ने क्या उत्तर दिया, इसे कहते हैं—

गाथा—सल्लं कामा विसं कामा, कामा आसीविसोपमा।
कामे पत्थेमाणा, अकामा जंति दुग्गइं ॥ ५३ ॥

छाया—शल्यं कामा विषं कामाः, कामा आशीविषोपमाः।
कामान् प्रार्थयमानाः अकामा यान्ति दुर्गतिम् ॥ ५३ ॥

अन्वयार्थ—(**कामा**) काम भोग (**सल्लं**) शल्य समान हैं (**कामा**) काम-भोग (**विसं**) विष समान हैं तथा (**कामा**) काम-भोग (**आसीविसोपमा**) सर्प समान हैं ऐसे (**कामे**) काम-भोगों की (**पत्थेमाणा**) इच्छा रखने वाले मनुष्य यदि (**अकामा**) भोगों का सेवन नहीं करें, तो भी (**दुग्गइं**) दुर्गति को (**जंति**) जाते हैं ॥

भावार्थ—नमिराजर्षि कहते हैं कि हे महाराज! जैसे शरीर में लगा हुआ बाण का अग्रभाग दुःख देता है, इसी प्रकार ये काम भोग दुःख-दायी हैं। जैसे विष पहले खाने में मीठा होता है और अन्त में मृत्यु को उत्पन्न करता है, इसी प्रकार ये काम प्रथम भोगते समय मनोहर प्रतीत होते हैं और पश्चात् अनेक दुःखों को उत्पन्न करते हैं। जैसे विषधर-सर्प फण ऊंचा करके नाचते समय अच्छा मालूम होता है, किन्तु उस का सम्बन्ध होने पर अर्थात् डस लेने पर प्राण संकट में पड़ जाते हैं। इसी प्रकार काम पहले तो मनोहर और सुखप्रद मालूम होते हैं, किन्तु सेवन करने के बाद अनेक भयङ्कर दुःख देते हैं। ऐसे भोग विलासों का सेवन करना तो दूर रहा, किन्तु इन की इच्छा करने से ही मनुष्य नरकगति या तिर्यञ्च गति को प्राप्त करता है। इसलिए हे देवेन्द्र! मैंने उत्तम भोग विलास पाने की इच्छा से वर्तमान में प्राप्त हुए भोगों का त्याग नहीं किया है, लेकिन वर्तमान और भावी विषयों में निस्पृह होकर विषय भोग का त्याग

किया है। क्योंकि मुमुक्षुओं को किसी पदार्थ की अभिलाषा नहीं होती है॥५३॥

भोगों की इच्छा करने वाले जीव किस प्रकार दुर्गति को पाते हैं, इसे दिखाते हैं—

गाथा—अहे वयइ कोहेणं, माणेणं अहमा गई ।
माया गइपडिग्घाओ, लोहाओ दुहओ भयं ॥ ५४ ॥

छाया—अधो व्रजति क्रोधेन मानेनाधमा गतिः ।

मायया गतिप्रतिघातो लोभाद् द्विधा भयम् ॥ ५४ ॥

अन्वयार्थ—जीव (**कोहेणं**)क्रोध से (**अहे**) नरक गति को जाता है (**माणेणं**) अहंकार से (**अहमा**) नीच (**गई**)गति पाता है (**माया**) माया से(**गइपडिग्घाओ**) सुगति का विनाश होता है, और (**लोहाओ**) लोभ से (**दुहओ**) इस लोक तथा परलोक में (**भयं**) भय होता है ॥

भावार्थ—हे देवेन्द्र! क्रोध करने से जीव नरक में जाता है। अहंकार करने से नीचगति पाता है। छल करने से उत्तम गति का नाश होता है, तथा लोभ करने से इस लोक में और परलोक में दुःख मिलता है। जो काम भोग की अभिलाषा करता है, उसके क्रोधादि अवश्य उत्पन्न होते हैं इसलिये हे देवेन्द्र ! ये काम-भोग सर्वथा त्यागने योग्य हैं, इस प्रकार नमि राजर्षि ने उत्तर दिया॥५४॥

जब अनेक उपायों से देवेन्द्र नमि राजर्षि को क्षोभ उत्पन्न नहीं कर सका, तब देवेन्द्र ने क्या किया, इसे दिखाते हैं,-

गाथा—अवउज्झिऊण माहणरूवं विउव्विऊण इंदत्तं
वंदइ अभित्थुणंतो इमाहि महुराहि वग्गूहिं ॥ ५५ ॥

छाया–अपोह्य ब्राह्मणरूपं विकृत्येन्द्रत्वम् ।
वन्दतेऽभिष्टुवन्नमाभिर्मधुराभिर्गीर्भिः ॥ ५५ ॥

अन्वयार्थ–(**माहणरूवं**) ब्राह्मण का रूप (**अवउज्झिऊण**) त्यागकर (**इंदत्तं**) इन्द्ररूप (**विउव्विऊण**) विक्रिया से बनाकर (**इमाहिं**) आगे कही गई (**महुराहिं**) मधुर (**वग्गूहिं**) वाणीसे (**अभित्थुणंतो**) स्तुति करते हुए देवेन्द्र ने (**वंदइ**) प्रणाम किया॥

भावार्थ–जब देवेन्द्र, अनेक उपायों से नमिराजर्षि को अपने धर्म से लेशमात्र भी नहीं डिगा सका, तब देवेन्द्र ने अपना कृत्रिम ब्राह्मण का रूप त्याग दिया, और विक्रिया द्वारा अपना असली इन्द्र का रूप बनाकर आगे कहे अनुसार मधुर और मनोहर शब्दों से नमिराजर्षि की स्तुति करने लगा ॥ ५५ ॥

देवेन्द्र ने क्या स्तुति की, इस को कहते हैं–

गाथा–अहो ते णिज्जिओ कोहो, अहो माणो पराइओ ।
अहो ते णिरक्किया माया, अहो लोहो वसीकओ ॥५६॥

छाया–अहो त्वया निर्जितः क्रोधो अहो मानः पराजितः ।
अहो त्वया निराकृता मायाऽहो लोभो वशीकृतः ॥ ५६ ॥

अन्वयार्थ–हे नमिराज ! (**अहो**) आश्चर्य है कि (**ते**) तुमने (**कोहो**) क्रोध को (**णिज्जिओ**) जीत लिया है, (**अहो**) आश्चर्य है कि तुमने (**माणो**) अहंकार का (**पराइओ**) पराजय कर दिया है, (**अहो**) आश्चर्य है कि (**ते**) तुमने (**माया**) कपट को (**णिरक्किया**) दूर कर दिया है, (**अहो**) आश्चर्य है कि तुमने (**लोहो**) लोभ को (**वसीकओ**) वशमें कर लिया है ॥

भावार्थ—देवेन्द्र नमिराजर्षि से निम्न प्रकार कहने लगा कि हे नमिराजर्षि ! मुझे आश्चर्य होता है कि तुमने प्रबल क्रोध को जीत लिया है, क्योंकि मैंने पहले तुम्हें शत्रु राजाओं को वश में करने का उपदेश कियाथा, तुमने शान्ति पूर्वक उत्तर दिया कि आत्मा को वश में करना ही सर्वोत्तम है; दूसरों को वश में करने से कुछ लाभ नहीं है। अतएव मुझे निश्चय होगया है कि तुमने क्रोध शत्रु को जीत लिया है। आश्चर्य होता है कि हे नमिराज ! तुमने अहंकार को भी जीत लिया है, क्योंकि मैंने पहले प्रश्न किया था कि हे नमिराज ! तुम्हारे रनवास तथा राजभवन आदि को अग्नि भस्म कर रही है, इसको शान्त करना तुम्हारा कर्तव्य है। तुमने इसका उत्तर दिया कि मेरा ज्ञान दर्शन और चारित्र मेरे पास है, नगरी में मेरा कुछ नहीं है, ऐसा उत्तर सुन कर मुझ को मालूम हो गया कि तुम में अहंकार नहीं है। हे महात्मन् ! मुझ को आश्चर्य होता है कि तुमने माया का भी तिरस्कार कर दिया है। क्योंकि पहले मैंने रक्षा के लिए किला कोट आदि बनवाने का कपट उपदेश दिया था, किन्तु तुमने धर्म को ही रक्षा करने वाला बताया है, इससे मुझे निश्चय हो गया है कि तुम माया रहित हो, और हे नमिराजर्षि ! आश्चर्य होता है कि तुमने लोभ का भी नाश कर दिया है। क्योंकि मैंने पहले उपदेश किया था कि हे नमिराज ! तुमको मणि मोती सोना चांदी आदि पदार्थों से कोष की वृद्धि करके पश्चात् दीक्षा लेनी चाहिये। तुमने उत्तर में कहा था कि तृष्णा आकाश के समान अनन्त है, इसका पूर्ण होना असंभव है, एक संतोष ही तृष्णा को पूर्ण कर सकता है, इत्यादि वचनों को सुनकर मुझको दृढ़ विश्वास होगया है कि आप क्रोध आदि से रहित हैं ॥५६॥

गाथा—अहो ते अज्जवं साहु, अहो ते साहु मद्दवं।
अहो ते उत्तमा खंती, अहो ते मुत्ति उत्तमा ॥५७॥

छाया--अहो ते आर्जवं साधु, अहो ते साधु मार्दवम् ।
अहो ते उत्तमा क्षान्तिरहो ते मुक्तिरुत्तमा ॥ ५७ ॥

अन्वयार्थ--हे नमिराज! **(ते)** तुम्हारा **(साहु)** उत्तम **(अज्जवं)** सरल स्वभाव **(अहो)** आश्चर्यजनक है, **(ते)** तुम्हारा, **(साहु)** उत्तम **(मद्दवं)** कोमल स्वभाव **(अहो)** आश्चर्यकारी है, **(ते)** तुम्हारी **(उत्तमा)** उत्तम **(खंती)** क्षमा **(अहो)** आश्चर्यकारक है, **(ते)** तुम्हारी **(उत्तमा)** उत्तम **(मुत्ती)** निर्लोभता **(अहो)** आश्चर्य-उत्पादक है ॥

भावार्थ--हे नमिराज ! आपका उत्तम सरल स्वभाव प्रशंसनीय है। आपका उत्तम कोमल स्वभाव स्तुति करने योग्य है। आपकी उत्तम क्षमा आदरणीय है। तथा आपकी निर्लोभता अतिश्लाघनीय है। कारण कि मैंने कई प्रकार के प्रश्न किये, किन्तु आपने कोमल और सरल स्वभाव से उनका उत्तर दिया, तथा उन प्रश्नों का उत्तर देते समय आपने लेशमात्र भी क्षमा का उल्लंघन नहीं किया, और न लोभ ही को स्थान दिया। इसलिये आपके क्षमा आदि गुण आदर्शरूप हैं। उक्त कथन से यह शिक्षा मिलती है कि प्रतिवादी कितना ही प्रतिकूल प्रश्न करे, किन्तु वादी को शान्ति और क्षमा धारण कर सरलस्वभाव से उत्तर देना चाहिये ॥ ५७ ॥

उक्त प्रकार देवेन्द्र नमिराजर्षि की गुणों द्वारा स्तुति करके अब फल द्वारा स्तुति करता है--

गाथा--इहंऽसि उत्तमो भंते !, पेच्चा होहिसि उत्तमो ।
लोगुत्तमुत्तमं ठाणं, सिद्धिं गच्छसि नीरओ ॥ ५८ ॥

छाया--इहास्युत्तमो भगवन् !, प्रेत्य भविष्यस्युत्तमः ।
लोकोत्तमसुत्तमं स्थानं, सिद्धिं गच्छसि [illegible] ॥

अन्वयार्थ-(भंते) हे भगवन्! **(इहं)** इसलोक में **(उत्तमो)** तुम उत्तम **(असि)** हो तथा **(पेच्चा)** परलोक में **(उत्तमो)** उत्तम **(होहिसि)** होओगे और **(नीरओ)** कर्म रहित होकर **(लोगुत्तमुत्तमं)** लोक में सर्वश्रेष्ठ **(सिद्धिं)** मुक्ति **(ठाणं)** स्थान को **(गच्छसि)** प्राप्त करोगे ॥

भावार्थ-हे भगवन् नमिराज! आप इस जन्म में उत्तम हैं, और परलोक में भी उत्तम होंगे, तथा कर्म रहित होकर मोक्ष पद को प्राप्त करेंगे, क्योंकि जो गुण आपने धारण किये हैं, उनका फल मोक्ष प्राप्ति है। इस सूत्र से यह शिक्षा मिलती है कि बिना परीक्षा किये वेषमात्र देखकर न किसी की स्तुति करना चाहिये, और न वंदना ही करनी चाहिये ॥ ५८ ॥

अब स्तुति का उपसंहार करते हैं—

गाथा-एवं अभित्थुणंतो, रायरिसिं उत्तमाए सद्धाए
पायाहिणं करेंतो, पुणो पुणो वदए सक्को ॥५९॥

छाया-एवमभिष्टुवन् राजर्षिमुत्तमया श्रद्धया।
प्रदक्षिणां कुर्वन्, पुनः पुनर्वन्दते शक्रः ॥ ५९ ॥

अन्वयार्थ-(एवं) उक्त प्रकार **(सक्को)** देवेन्द्र **(अभित्थुणंतो)** स्तुति करता हुआ **(उत्तमाए)** उत्तम **(सद्धाए)** भक्ति से **(रायरिसिं)** नमिराजर्षि की **(पायाहिणं)** प्रदक्षिणा **(करेंतो)** करता हुआ **(पुणो पुणो)** बारंबार **(वंदए)** वंदना करने लगा ॥

भावार्थ—उक्त प्रकार स्तुति करते हुए शक्रेन्द्र ने उत्कृष्ट भक्ति से नमिराजर्षि की प्रदक्षिणा की, और बारंबार नमस्कार किया ॥ ५९ ॥

इसके बाद देवेन्द्र ने क्या किया, इसे कहते हैं—

गाथा—तो वंदिऊण पाए, चक्कंकुसलक्खणे मुणिवरस्स
आगासेणुप्पइओ, ललियचवलकुंडलतिरीडी ।
॥६०॥

छाया—ततो वन्दित्वा पादौ, चक्राङ्कुशलक्षणौ मुनिवरस्य ।
आकाशेनोत्पतितः, ललितचपलकुण्डलकिरीटी ॥६०॥

अन्वयार्थ--(तो) प्रणाम करने के बाद **(ललियचवलकुंडलतिरीडी)** सुन्दर चंचल कुंडल को तथा मुकट को धारण करनेवाला शक्रेन्द्र ने **(चक्कंकुसलक्खणे)** चक्र और अंकुश के लक्षणों से युक्त **(मुणिवरस्स)** मुनीश्वर नमिराज के **(पाए)** चरणों को **(वंदिऊण)** वंदना करके **(आगासेण)** आकाश मार्गमें **(उप्पइओ)** ऊपर देवलोक को गया ॥

भावार्थ--नमिराजर्षि की भक्तिपूर्वक स्तुति और प्रणाम करने के बाद सुन्दर चपल कुंडल तथा मुकुट से शोभित देवेन्द्र मुनीश्वर के चक्र तथा अंकुश आकार के लक्षणों से भूषित चरणकमलों की भक्तिपूर्वक वन्दना कर के बड़े हर्ष से आकाशमार्ग द्वारा स्वर्गलोक को गया ॥६०॥

उक्त प्रकार देवेन्द्र द्वारा स्तुति वंदना करने पर नमिराजर्षि ने क्या किया, इसे बताते हैं—

गाथा--नमी नमेइ अप्पाणं, सक्खं सक्केण चोइओ ।
चइऊण गेहं वइदेही, सामण्णे पज्जुवट्ठिओ ॥६१॥

छाया--नमिर्नमयत्यात्मानं, साक्षाच्छक्रेण चोदितः ।
त्यक्त्वा गृहं वैदेही, श्रामण्ये पर्युपस्थितः ॥६१॥

अन्वयार्थ-(सक्खं) प्रत्यक्ष में (सक्केण) देवेन्द्र से (चोइओ) प्रेरित हुए (वइदेही) विदेहदेशके अधिपति (नमि) नमिराजर्षि ने (अप्पाणं) अपनी आत्मा को (नमेइ) नम्रीभूत किया, और (गेहं) घर को (चइऊण) त्यागकर (सामण्णे) मुनिधर्म को (पज्जुवट्ठिओ) धारण किया ॥

भावार्थ साक्षात् देवेन्द्र को वंदना स्तुति करते हुए देख कर भी मिथिला अधिपति नमिराजर्षि ने अहंकार नहीं किया,प्रत्युत अपनी आत्मा को अत्यन्त कोमल किया। तथा घर कुटुम्ब और राज्यादि को त्याग कर मुनिचरित्र को धारण किया ॥६१॥

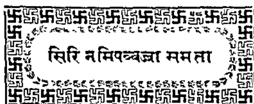
क्या नमिराजर्षि ने ही संयम धारण किया, अथवा औरोंने भी इस दूसरे मुनिचारित्र का पालन किया? इसको दिखाते हैं—

गाथा—एवं करेंति संबुद्धा, पंडिया पवियक्खणा।
विणियट्टंति भोगेसु,जहा से णमिरायरिसी ॥६२॥

छाया—*एवं कुर्वन्ति संबुद्धाः, पण्डिताः प्रविचक्षणाः।*
विनिवर्तन्ते भोगेभ्यो, यथा स नमिराजर्षिः ॥६२॥

अन्वयार्थ—(संबुद्धा) जीव अजीवादि तत्त्व को जाननेवाले (पंडिया) शास्त्र रहस्य के ज्ञाता (पवियक्खणा) क्रिया पालने में प्रवीण पुरुष (एवं) नमिराजर्षि की तरह (करेंति) मुनि संयम पालने में निश्चल रहते हैं तथा (भोगेसु) इन्द्रिय और मन के विषयों से (विणियट्टंति) निवृत्त होते हैं (जहा) जैसे कि (से) वह (नमिरायरिसी) नमिराजर्षि भोग विलास से निवृत्त हुए हैं, इसी प्रकार मनुष्य मात्र को होना चाहिये ॥

भावार्थ—जिस प्रकार नमिराजर्षि अनेक बाधाओं के आने पर भी मुनि धर्म से नहीं डिगे हैं, इसी प्रकार अन्य महात्मा जीव अजीव आदि तत्व को जाननेवाले सम्यग्दृष्टि शास्त्रों के रहस्य के ज्ञाता तथा सम्यग्ज्ञान के बल से उत्तम क्रियाओं को पालने में दक्ष पुरुष भी मुनिधर्म से नहीं डिगते हैं. अर्थात् अनेक आपत्तियों के आने पर भी निश्चल रहते हैं। हे भव्य जीवो! जिस तरह नमिराजर्षि अपने धर्म से नहीं डिगे, इसी तरह तुम लोगों को भी चाहिए कि प्राण जाने पर भी आत्महितकारी धर्म को कभी मत छोड़ो ॥६२॥



नमिपव्वज्जा का पाठान्तर

मूलपाठ	गाथा	पाठान्तर
अकारिणोऽथ	३०	अकारिणुत्थ
अहो	१६	अहो ते
उ	४८	हु
उत्तमाए	५९	उत्तमाइ
उस्सूलगसयग्घीओ	१८	उस्सूलग सयग्घी य, उस्सूलगसयग्घीओ
एगंतमहिड्डिओ	४	एगंतमहिड्ढिओ
कामे	८	कामे य
काऊणं	२८	काऊण
किच	१४-४०	किच्चाण
कुसग्गेणं	४४	कुसग्गेण
कुविज्ज	२६	कुज्जेज्ज
कोलाहलगभूयं	५	कोलाहलसंभूयं, कोलाहलगब्भूतं
कोसं च	४६	कोसं
खंतिं	२०	खंतं
गेहं वइदेही	६१	गेहं च वेदेही
चक्कंकुसलक्खणो	६०	चक्कंकुसलक्खणा
चयम्मि	५१	जहिस्सु
चिच्चा	४	चेच्चा
चेव अप्पाणं	३६	चेवमप्पाणं
जिणित्ता	३४	जइत्ता
जद्दा	३८	जिट्ठा
जिणेज्ज	३४	जिणिज्ज
तयनारायजुत्तेणं	२२	तयनारायजुत्तेण
तवसंवरमग्गलं	२०	तवसंजममग्गलं
तम्हावि	४०	तस्सवि
नेहि	४८	नेहि
दच्चा	३८	दत्ता
नगरिं	२०	नगरे

नानमंति	३२	नो नमंति
नावपिकलह	१२	नावपेक्खइ
पेश्रा	२८	पच्छा
पायाहिणं	४१	पयाहिणं
वहुमाणगिहाणि	२४	पद्ममाणगिहाणि.वद्धमाणगिहाणि
महुराहि	५५	मधुराहि
माहणरूवेण	६	माहणवेसेण
ललियचवलकुंडलतिरीडी	६०	ललियचवलकुंडलतिरीडी
लोहाश्रो	५२	लोभाश्रो
याऊ	१२	यश्रो
यिहग्मसि	५१	विहग्गमि
सद्दं	२०	सद्दं च
सो	३	मं



नोट—क ग च ज त द प य व इन अक्षरों का लोप भी होता है। तथा उक्त वर्णों के स्थान में य भी होता है। जैसे ततो-तश्रो, उद्दीरइत्ता-उईरइत्ता, दुहिया-दुहिश्रा, जिनं-जियं इत्यादि।
त के स्थान में द भी होता है, जैसे ततो-तदो आदि।
न के स्थान में ण भी होता है। जैसे किन्नु-किण्णु आदि।
अनुस्वार के स्थान में अनुस्वार से अगले वर्ण का पाचवाँ अक्षर भी होता है। जैसे खंति-खन्ति, इंदत्तं-इन्दत्तं।
संयुक्त वर्ण का पूर्व स्वर हृस्व भी होता है जैसे मोच्चा-मुच्चा आदि।



जैनसिद्धान्त कौमुदी (अर्धमागधीव्याकरण)

(शतावधानी पं० मुनि श्री रत्नचन्द्रजीस्वामी विरचिता)

यह विद्वत्तापूर्ण व्याकरण जैनागमों के ज्ञान का अपूर्व ाधन है। यद्यपि प्राकृत शौरसेनी मागधी पैशाचिकी चू- तका और अपभ्रंश इन छह भाषाओं के कई व्याकरण पाये ाते हैं, लेकिन अर्धमागधी भाषा का कोई व्याकरण उपलब्ध हीं है, यह व्याकरण इस बड़ी भारी कमी की पूर्ति करता है। स में जैन सूत्रों में आये हुए शब्दों की पूर्णतया सिद्धि की ई है। जैनागम के जिज्ञासुओं को प्राप्त हुए स्वर्ण समय को चूककर इस ग्रन्थ से लाभ उठाना चाहिए। इस को वि- ालय पाठशाला स्कूल और कालेजों के पठन क्रम में लाकर ुनि महोदय के अटूट परिश्रम को सफल करना चाहिए। र्व जनता के लाभार्थ इस पक्की जिल्द वाले बृहत् ग्रन्थ का ूल्य केवल १॥) रु० ही रखा गया है।